सम्पादक
रमेश मेहता

हमारा साहित्य

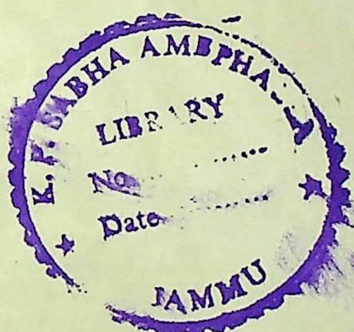
1979



हमारा साहित्य

1979

(जम्मू कश्मीर का लोक साहित्य)



सम्पादक :

रमेश मेहता

जे० एण्ड के० अकादमी आफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़,

जम्मू ।



सचिव द्वारा जे० एण्ड के० अकादमी
आफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़,
नहर मार्ग, जम्मू के लिए
प्रकाशित

o

प्रथम संस्करण : 1981

o

डोगरा प्रिंटिंग प्रेस,
पैलेस रोड, जम्मू में
मुद्रित

o

मूल्य : आठ रुपये

HAMARA SAHITYA 198

अनुक्रमणिका



आरम्भ

'हमारा साहित्य' का प्रस्तुत अंक—जो जम्मू-कश्मीर के लोक साहित्य को समर्पित है—आपके हाथों में सौंपते हुये अतीव प्रसन्नता हो रही है। जम्मू-कश्मीर भारत का एकमात्र ऐसा राज्य है जिसमें डोगरी, कश्मीरी, पंजाबी, लद्दाखी, गोजरी, पहाड़ी, भद्रवाही तथा अन्य अनेकानेक भाषाओं बोलियों का लोक-साहित्य विपुल मात्रा में उपलब्ध है। आज आवश्यकता इस बात की है कि डोगरी, कश्मीरी और लद्दाखी के लोक-साहित्य पर जितना काम किया जा चुका है, उसी को सामने रख कर इस क्षेत्र में बोली जाने वाली अन्य भाषाओं और बोलियों के लोक-साहित्य पर भी काम किया जाये। हमारा प्रयत्न रहेगा कि भविष्य में इस क्षेत्र की विभिन्न भाषाओं/बोलियों के लोक-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके जिस से इन में व्याप्त समान एवं असमान तत्वों की निशानदेही की जा सके ताकि इस क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत की पूरी तसवीर उभर कर सामने आ सके।

—रमेश मेहता

बलि और बलिदान : डोगरी लोकवार्ता के संदर्भ में

—ओम गोस्वामी

विश्व जन-मानस में 'बलि' प्राचीन काल से एक मान्य प्रथा के रूप में प्रचलित रही है। अपेक्षतया सुसंस्कृत व औद्योगिक सभ्यताओं में अब यह प्रथा समाप्त हो चुकी है। परन्तु फिर भी वहां के लोकसाहित्य में बलि-प्रथा—जिसमें पशुबलि, नरबलि दोनों शामिल हैं, के अवशेष प्राप्त हो जाते हैं। औद्योगिक अर्थ-तंत्र से अपरिचित सांस्कृतिक-खंडों में अभी बलि-परंपरा देखने को मिल जाती है।

भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में सांस्कृतिक मान्यताओं के साथ-साथ यह परंपरा भी उत्तरोत्तर क्षीण होती गई है। लेकिन सभ्यता के इस युग में भी समाचार-पत्र के झरोखे से कभी-कभार बाल-बलि की सूचना झांक जाती है। भारतीय दंड-संहिता में इस जघन्य अपराध के दंड का उचित प्रावधान किया गया है। इतिहास से हमें पता चलता है कि भारत में बाकायदा ऐसे कबीले रहे हैं जिनमें नरबलि का प्रचलन था। कार्य-सिद्धि के लिये देवी के आगे नरबलि देने वाले ठगों के गिरोहों की कहानियां भी इतिहास में अंकित हैं, जिनका विधिवत उन्मूलन लार्ड विलियम बैंटिक ने करना चाहा था।

किसी भौतिक तथा पराभौतिक पदार्थ अथवा भाव की प्राप्ति के लिये अदृश्य शक्तियों को प्रसन्न करने के लिये बलि का प्रचलन बहुत पुराना है। तंत्र विधि द्वारा सन्तान प्राप्ति के लिये बाल-बलि के प्रसंग भी सुनने में आते रहे हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये की जाने वाली बलि का अनुष्ठान गोपनीय रखा जाता रहा है।

भारतीय वाङ्मय में ऐसे तांत्रिकों, कापालिकों व साधुओं की अनेक कथायें मौजूद हैं जो बलि के प्रसंगों तथा अनुष्ठानों से भरी पड़ी हैं।

सोमदेव भट्ट कृत 'कथा सरित्सागर' में एक ऐसे राजा की कहानी है जो अपनी वनयात्रा में एक मायावी साधु के जाल में फंस कर उसकी साधना में सहायक होता है। साधु जब उसे उबलते तेल के कड़ाह के गिर्द परिक्रमा करने को कहता है तो राजा उसकी धूर्तता भांप जाता है। राजा स्वयं इस कार्य से अपरिचित होने का बहाना बनाकर कापालिक को यह करके दिखाने को कहता है। तांत्रिक जब राजा के आगे-आगे परिक्रमा लेता है तो राजा उसे उठा कर उबलते कड़ाह में डाल देता है। तांत्रिक वाली सिद्धि उसे मिल जाती है। इस कथा से मिलती-जुलती कथाएं डोगरी लोकवार्ता में भी मौजूद हैं।

एक कहानी इस तरह है। राजा भोज बड़ा दानी राजा था। वह रोजाना हंसों को सच्चे मोती चुगा कर व चालीस मन सोना दान दे कर भोजन करता था। उसकी कीर्ति का यशगान पशु-पक्षी तक करते थे। किसी दूसरे राज्य के राजा विक्रमादित्य को जब किन्हीं हंसों द्वारा राजा भोज की दानवीरता का पता चला तो राजा विक्रमादित्य भेस बदल कर राजा के महल में नौकर हो गया और सोने का रहस्य जानने की ताक में रहने लगा।

एक दिन उसने देखा कि राजा पहले पहर उठ कर बाहर जा रहा है। वह भी उसके पीछे हो लिया। राजा ने घने जंगल में जाकर एक कुटिया का द्वार खटखटाया। अन्दर से आवाज़ आई कौन है? राजा ने कहा—मैं राजा भोज हूँ।' कपाट खुले। एक साधु नज़र आया। अन्दर तेल का एक बड़ा कड़ाह उबल रहा था। साधु ने भोज को उठा कर कड़ाह में डाला। फिर उसका मांस खाया। मांस खाकर उसकी हड्डियों पर जल अभिषिक्त किया। राजा भोज हरिओम कहता जी उठा। तब साधु ने उसे एक मन सोना उपहार में दिया।

स्वेच्छा से बलि देकर दैवी चमत्कार के लिये जीवित हो उठना—इस 'मोटिफ' का प्रयोग भारतीय लोक-वाङ्मय में बड़ा आम हुआ है। इस मोटिफ में परोपकार के लिये या स्वामी-भक्ति में बलि दी जाती है। कहीं-कहीं सौतिया डाह में विपुत्र की बलि दे दी जाती है। किन्हीं कहानियों में राजा अपने निजी स्वार्थ के वशीभूत पुत्र की बलि दे डालता है।

पुत्र बलि—पुत्र बलि के प्रसंग पूरे विश्व की जन-वार्ता में बिखरे पड़े

हैं। जे० जी० फ्रेज़र ने 'द गोल्डन बो' के राजपुत्र की बलि वाले पाठ (Chapter XXVI) में स्वीडन के 'ग्रांन' राजा का प्रसंग दिया है, जिसने ग्रपना जीवन बढ़ाने के लिये ग्रपने नौ पुत्रों की बलि दे दी थी। राजा ने जब दूसरे लड़के को बलि पर चढ़ाया तो भगवान से उसे वर मिला कि वह उतनी ही लम्बी ग्रायु भोग सकेगा कि जितने पुत्रों की बलि वह प्रत्येक नौ वर्षों के बाद में देता रहे। जब उसने ग्रपने सातवें लड़के की बलि दी तब भी वह जीवित रहा, लेकिन वह इतना ग्रशक्त हो चुका था कि वह चल न पाता ग्रौर उसे कुर्सी पर बैठा कर ले जाना पड़ता था। तब उसने ग्रपने ग्राठवें बेटे की बलि दी ग्रौर नौ वर्ष ग्रौर बिस्तर पर ज़िन्दा पड़ा रहा। इसके बाद उसने ग्रपने नवें बेटे की बलि दी ग्रौर नौ वर्ष फिर जिन्दा रहा लेकिन इस तरह कि वह सींग के ज़रीये बच्चे की तरह दूध पीता था। ग्रब जब उसने ग्रपने ग्रन्तिम एक-मात्र जीवित लड़के की कुरबानी देना चाही तो देशवासियों ने उसे इसकी इजाज़त न दी। तब वह मर गया ग्रौर उसे 'उपसाला' की एक पहाड़ी पर दबा दिया गया।

पत्नी के फुसलाने पर बहन की हत्या करके उसके खून में स्त्री की ग्रोढ़नी रंगने की एक मार्मिक कथा डोगरी लोक साहित्य में मौजूद है। ननद ने भाभी से ग्रोढ़नी मांग कर ग्रोढ़ी थी, जिस पर कव्वा बीठ गया। इस पर वह स्त्री ग्रपने पति से रूठ बैठी ग्रौर उसके ग्रागे शर्त रखी की ननद के लहू में ग्रोढ़नी भिगो दे तभी उसे शांति मिलेगी। भाई ने बहन को जंगल में ले जाकर उसे पत्नी की इच्छा पर कुरबान कर डाला। जहां लड़की को कटारे से खत्म किया गया वहां ग्राम का एक पेड़ उग ग्राया। यदि कोई राह चलते उस पेड़ का ग्राम तोड़ने लगता तो ग्रावाज़ ग्राती—

राजे देग्रा बेटेग्रा,
ग्रम्ब निं त्रोड़, डाली निं मरोड़।
सक्के भाइये भैंन मारी,
सूहा दित्ता डोर।

इस कहानी में हविस की वेदी पर मासूम भावना की बलि का हृदय स्पर्शी दर्शन होता है। देखा जाये तो हत्या ग्रौर बलि में ज्यादा फर्क नहीं है। इसे हम ग्रागे चलकर ग्रौर स्पष्ट करेंगे। परन्तु बलि के स्वरूप को समझाने के लिये हमें लोक वार्ता से प्राप्त ग्रन्तः साक्ष्यों का प्रलम्ब ग्रभीष्ट है। लोक कहानियों के ग्रध्ययन से बलि की कुछ शर्तें हमारे सामने स्पष्ट होती हैं।

बलि की शर्तें—1. नरबलि में उच्च कुल, शील, गोत्र के व्यक्ति को प्राथमिकता देने का संकेत 'बावा बिरपानाथ' की कारक में स्पष्टतया मौजूद है :—

ककका-भूरा होए ब्रैह्मण सो बल लगदी भारी।

कापालिक तांत्रिकों, सिद्धों की कहानियों में भी बड़ी सिद्धी के लिये राजा की बलि के संकेत प्राप्त होते हैं। 'मनुक्खे दा शलैप्पा'† नाम की लोककथा में एक लोभी व्यक्ति का चित्रण है जो अपने ब्राह्मण मित्र की बलि देना चाहता है। यहां कुछ पंक्तियां उद्धृत करना जरूरी लगता है :—

(क) आखर ब्रैह्मण पैंडा मारियै ठोक्करै कच्छ पुज्जा। इन्ना मता धन्न दिक्खियै ठौक्कर ललचोई गेआ ते अपनी जनानी गी हुक्म दिता जे ओ 'काली बल' ते 'टिकड़ा' त्यार करै तां जे फटाफट ब्रैह्मणै दी बलि देइयै धन खूसेआ जा।"

यहां लोभ के लिये बलि देने का प्रसंग उद्घाटित होता है।

2. देव निमित्त दी जाने वाली बलि में बलि-पात्र का शरीर अखंड-अभंग-निर्दोष होना चाहिये। एक डोगरी लोककथा जो संभवतः अन्य प्रदेशों में भी प्रचलित है, में एक राजा व उसके मंत्री की दिलचस्प शिकार यात्रा का वर्णन है। दोनों शिकार के पीछे-पीछे अपनी सेना से अलग-अलग घने जंगल में पहुंच जाते हैं, जहां तलवार से राजा की तर्जनी कट जाती है। अफसोस करने के बजाये मंत्री केवल इतना कहता है कि भगवान जो करता है अच्छा ही करता है। उसका यह कथन राजा को जले पर नमक प्रतीत होता है। आगे चल कर राजा उसे पानी की तलाश में एक सूखे कूएं में झांकते देखकर पीछे से धक्का दे देता है। मंत्री कूएं में गिर पड़ता है और गिरते-गिरते कहता है इसमें भी भगवान ने कुछ भला ही सोचा होगा। तभी राजा को जंगल के आदि-वासी पकड़ कर ले जाते हैं और वनदेवी के आगे उसका वध करने लगते हैं। तभी एक व्यक्ति की नज़र राजा की कटी उंगली पर पड़ती है और राजा को बलि के अनुपयुक्त करार दे कर मुक्त कर दिया जाता है। बाद में राजा के सैनिक भी पहुंच जाते हैं। मंत्री को कूएं से निकाला जाता है। राजा अब मंत्री के कथन का मर्म जान लेता है। यदि उसने मंत्री को कूएं में न धकेला होता तो निश्चय

---

† 'नन्दै दा कड़शा'—डोगरी लोक कथां भाग—3, पृष्ठ—52, प्रकाशक—जे० एण्ड के० कल्चरल अकादमी, जम्मू।

ही खंडित शरीर का होने के कारण वह तो छूट जाता लेकिन मंत्री की बलि दे दी गई होती ।

3. पशु बलि में बलि दिये जाने वाले पशु का रंग प्रायः काला या गहरा भूरा होना जरूरी माना जाता है ।

4. जहां पशु-बलि के स्थान पर भोजन और मिष्ठान्न दिया जाता है वहां इस बात का ध्यान रखा जाता है कि देवता को भोग लगाने से पहले इन पदार्थों को कोई व्यक्ति न चखे, अन्यथा इसे जूठा मान कर देवता के अनुपयुक्त करार दे दिया जावेगा ।

'बलि' शब्द का सम्बन्ध कृषि से भी है । प्राचीन समय में ज़मीन की उपज का जो भाग राजा को राजकर के रूप में दिया जाता उसे 'बलि' कहा जाता था ।

इस प्रथा का प्रचलन आदिम काल में भी था जब कि शिकार पर जाने से पहले आदिम मानव शकुन के लिये अपने आवास स्थल से किसी पालतू या आस-पास उपलब्ध छोटे पशु-पक्षी का वध करके बड़े शिकार के लिये आगे बढ़ता था । भावना यह थी कि शिकार यात्रा सफल हो और वन देवता तथा अन्य शक्तियों की ओर से कोई बड़ी बाधा उपस्थित न हो ।

मानव ने जब कृषि में पांव रखा तो अनावृष्टि व अन्य प्राकृतिक आपदाओं से बचाव के लिये भी ज़मीन को बलि भेंट करता रहा ... जिससे कि खूब अनाज हो ।

अनेक शुभ कामों में जैसे पुत्र जन्म, ब्याह, यात्रा या स्वास्थ्य लाभ के लिये किये गये उपक्रम में पशु बलि की रीति अभी भी डोगरा जन मानस में प्रचलित है । इसमें भी भावना यही रहती है कि कार्य विशेष की सम्पन्नता में बिघ्न-बाधा उपस्थित न हो । सांस्कारिक घरानों में कुलदेवता के नाम पर बकरे की बलि की रीति का प्रचलन अभी भी है । मनौती पूरी हो जाने पर कुछ लोक काली माता के नाम पर बकरे की बलि देते हैं । बाहु† में कालिका देवी के मन्दिर में छिल्लियां‡ चढ़ती हैं । कुछ लोग तो सचमुच की बकरी चढ़ाते हैं और कुछ बकरी के नाम का धन चढ़ा कर बाड़े में बन्द बकरियों को पानी से भिगो कर अपनी भेंट चढ़ा देते हैं ।

---

† जम्मू में तवी पार का बाहुकिला ।
‡ बकरियां ।

डोगरा घरों में शादी के बाद वर-वधु के गृह-प्रवेश पर उनके सिरों से काला मुर्गा वारा जाता है। इसे 'कुक्कड़ परेड़ना' कहते हैं। स्वास्थ्य लाभ के लिये भूत-मसान प्रणाली अपनाने वाले लोग जब रस्सी पकड़ कर नाचते हैं और उनकी 'मुहार' में कुछ बाधा उपस्थित होती है तो 'सौगनिया' काले मुर्गे की बलि देकर 'मुहार' आगे चलाता है।

डोगरा-अंचल में जिन पशुओं की बलि दी जाती है उनमें मुर्गा-मुर्गी तथा बकरा-बकरी प्रमुख हैं। कहीं-कहीं भेड़ की बलि भी देने का प्रचलन है। लोक-प्रवाद है कि किसी समय बाह्वे के किले में काली माता के आगे भैंसे की बलि दी जाती थी।

बहुत सी डोगरा बिरादरियों में जातीय 'मेल' के अवसर पर आज भी बकरों की बलि दी जाती है। हिन्दुओं में पशु वध को 'झटका' व मुसलमानों में हलाल करना कहते हैं। मुसलमानों में ईश्वर प्रीत्यर्थ पशु-बलि को 'कुरबानी' कहते हैं।

हिन्दुओं में अब कुछ लोग पशु-बलि न देकर हलवा-पूरी जिमा कर अपनी निष्ठा प्रकट करने लगे हैं। वे किसी भी प्राणी का लहू बहाने को हत्या ही मानते हैं।

बलि के लिये डोगरी में 'बल' शब्द प्रयुक्त होता है। 'बल-कड्ढनी', 'बल-छोड़नी' इत्यादि पद बलि प्रथा के आनुष्ठानिक परिवर्तनों को प्रकट करते हैं। पुरातन संस्कारों को मानने वाले डोगरे भोजन करने से पूर्व थाली से अन्नादि का कुछ अंश निकाल कर रख देते हैं, जिसे 'बल' कहा जाता है। इसे 'पितर-आत्माओं' के नाम पर भोजनोपरान्त कव्वों को दे दिया जाता है।

श्राद्ध व पितृ-कर्मों में भी अनुष्ठान-कर्ता भोजन करवाने से पहले यमादि अलौकिक तथा कव्वा-कुत्ता आदि लौकिक—कुल सात जीवों के नाम पर दही व चावल का थोड़ा-थोड़ा अंश निकाल कर रख देता है—इसे भी 'बल' ही कहते हैं। वास्तव में यह 'बल' प्रथा जीव सृष्टि के प्रति मानव की सह-अस्तित्व भावना की प्रतिफलक है।

देवी-देवता के निमित्त स्वेच्छा से या बलपूर्वक बलि वेदी पर चढ़ने-चढ़ाने के इस विधान पर लम्बी चर्चा के बाद बलि के एक अन्य विधान पर दृष्टिपात कर लेना ज़रूरी है जो कि 'डुग्गर' की अपनी विशेषता है। यहां अनेक ऐसे शहीद हुये हैं जिन्होंने मानवीय आदर्शों, व्यक्तिगत अहं तथा सभ्यता के ऊंचे विचारों के निमित्त अपने प्राणों का उत्सर्ग किया है। इनमें से कुछ

तत्कालीन षड़यंत्रों से जूझते हुये शहीद कर दिये गये और कुछ को जुल्म-जब्र की राह में आत्मघात करना पड़ा। दूसरों की राह हमवार हो इसके लिये अपने जीवन को दाव पर लगाने वाले ऐसे व्यक्तियों की स्मृति में जन-मानस ने अनेक स्मारक स्थापित किये हैं जिन्हें देहरा और 'देहरियां' कहते हैं।

देहरी मन्दिर नुमा छोटे से स्मारक को कहते हैं, जिसमें शहीद के मोहरे रखे रहते हैं। मोहरे मृत-व्यक्ति के 'इमेजिज़' होते हैं और इन्हें लोक-शिल्पी गढ़ता है। यह देहरियां प्रायः जागीरदारी प्रणाली के दमन-चक्र के प्रतीक अवशेष हैं। जिन लोगों ने जागीरी निजाम की मूढ़ताओं, आधारहीन अहम्मन्यताओं की नींव में अपने प्राण दिये हैं और सामंती षड़यंत्रों के शिकार हुये हैं, उन्हें डोगरा धरती ने भुलाया नहीं, बल्कि उनकी याद को इन भाव-स्मारकों के रूप में चिर-स्थाई बना दिया है। परन्तु तमाम शहीद जागीरी निज़ाम के दमन-चक्र से नहीं निकले। अनेक शहीदों, शीलवतियों* को उस समय की कुप्रथाओं व रुग्ण सामाजिक ढांचे के कारण मजबूर होकर मरना पड़ा। कुछ ने बे-इज्ज़ती के जीने से मर जाना बेहतर समझा है। उच्च अहं की इन विभूतियों को समय, समाज व इसके कुचक्रों की बलिवेदी पर बलिदान देना पड़ा है। लोक-मानस ने मरणोपरान्त इनका सत्कार किया है। देहरी बना कर पश्चाताप प्रकट करके, मोहरों की स्थापना करके और लोक देवता के रूप में उनकी मान्यता करके। लोक-गायकों ने गाथायें रच कर उन का यशोगान किया है। समय ने मानव की बलि लेकर मानवता को प्रतिष्ठित किया है।

वास्तव में हज़ारों की संख्या में हुई यह हत्याएं और आत्मघात मानव चेतना के विकास की कथा कहते हैं। इसे बलि का उच्चतम आदर्श माना जाना चाहिये। विशेषतया ऐसी शहीद-गाथायें जिनमें शहीदों व शीलवतियों ने अपने अधिकार व आत्म-सम्मान के लिये प्राणों का उत्सर्ग किया है।

बलि दूसरे अर्थों में किसी भी प्राणी की आनुष्ठानिक या लोक-विश्वास सम्मत हत्या है। और बलि की उत्कृष्ट स्थिति बलिदान है। डुग्गर की शहीदी गाथायें वास्तव में बलिदान की श्रेष्ठ कहानियां हैं।

डोगरा-अंचल के 'कंढी' और 'ऐंदड़' क्षेत्र में देहरियों की बहुतायत इस बात की सूचक है कि जागीरी दौर में सामाजिक ढांचे में परिवर्तन के लिये छिट-पुट संघर्ष होते रहे हैं। नृवंश-शास्त्र की दृष्टि से इन शहीद स्मारकों का

* स्त्रियां जो शहीद या सती हुईं।

सीधे यह अर्थ निकलता है कि डोगरा जन-मानस कबीले की ज़िन्दगी से कृषक समाज की चेतन-सीढ़ी पर आरूढ़ होने के लिये हाथ-पैर मार रहा था। आदिम मानव, अर्थ वन-मानव और कबीले के मानव में 'बलि' एक अनिवार्य शर्त है। मानव विकास की यह तीनों स्थितियां 'सभ्यता' व 'अहं' के मानचित्र पर निम्न स्थितियां हैं। परम्पराजीवी होने के कारण कृषक समाज में भी बलि-प्रथा के अवशेष चले आये हैं, लेकिन चेतनता की दृष्टि से यह अधिक विकसित स्थिति है। वैचारिक विकास होने पर ही व्यक्ति अधिकार व न्याय के हक में उठ सकता है या प्राणों का मोह त्याग कर विपरीत शक्तियों से टक्कर ले सकता है।

वन में सामूहिक आधार पर जीने वाले अहं-शून्य वन मानव से आगे की चेतन-स्थिति कबीला है। आदिवासी ढंग पर गठित कबीले में उसका सरदार ही 'अहं' की सब से बड़ी मिसाल होता है। वैयक्तिक स्तर पर प्रत्येक सदस्य का अहं जाग्रत नहीं होता। कबीले के सरदार का सम्मान ही व्यक्ति का सम्मान है, उसका आदेश ही ब्रह्म-वाक्य है। सामंती निज़ाम में चूंकि सरदार और सदस्य के मध्य फासला अधिक होता है, इस लिये निजी लिप्साओं के वशीभूत सामंत, सरदार व उसका अमला-फैला अधिक अत्याचार करने लगता है। प्रतिक्रिया स्वरूप मानव का सुषुप्त-अहं जाग्रत होता है। मार्क्सवादी दृष्टि से यह 'प्रॉडक्टिव फोर्सिज़' के ध्रुवीकरण की प्रक्रिया है। यह जागरण चूंकि सत्ता से हथियारबन्द होड़ नहीं ले सकता इसलिये ज़ुल्म के आगे उसे मृत्यु का वरण करना पड़ता है। अहं-जागरण का यह नियम डुग्गर के अनेक शहीदों की कथाओं में स्पष्टतया मौजूद है। 'बावा जित्तो'* इसके सबसे बड़े प्रमाण हैं।

बलि के कारण—बलि देने वाले का विश्वास रहता है कि वह किसी उच्च कार्य के लिये यह अनुष्ठान कर रहा है। अवसर और वांछा के अनुसार बलि के कारण भी भिन्न-भिन्न होते हैं। इन में से प्रमुख की चर्चा यहां अभीष्ट है।

निर्माण कार्यों में— (क) महल या दुर्ग बनाने पर: कई बार महल, दुर्ग अथवा विशाल भवनों के निर्माण में बाधा उपस्थित होने पर

---

* बावा जित्तो ने फसल पर अपने अधिकार के लिये निधिसिंह महता (जोकि जागीरदारी निज़ाम का प्रतिनिधि था) के सामने अनाज़ के ढेर पर अपने पेट में कटारा घोंप कर प्राण त्याग दिये थे। यह लगभग पांच शताब्दी पहले की घटना है।

वलि दी जाती है। महताब सिंह जब महताबगढ़ का किला बनवा रहा था तब किले की दीवार बार-बार ढह जाती—

चूना, सुर्खी इट्‌ट रखांदा, इट्‌ट खड़ोंदी नाईं,
हेठ नींग्रां दै राखस रौह्‌न्दा, ग्रो बल मंगदा भारी।

कारक बावा थोलू में इस ऐतिहासिक घटना का विशद चित्रण हुग्रा है। महताव सिंह की ग्राज्ञा पर उसके व्यक्ति बावा थोलू को बलि निमत्यर्थ फुसला कर ले ग्र ते हैं ग्रौर बाद में उसे दुर्ग की नींव में दबा दिया जाता है।

नमें पुग्राये टल्ले थोलू गी विच नींग्रां दै ग्राई,
वाह्‌में दा पकड़ियै उसी राजे नै दित्ता विच बठाई,
× × × ×
पैह्‌ली इट्‌ट रक्खी छात्ती पर दूई मत्थै ग्राई।

(ख) कूग्रां खोदने पर—जम्मू के राजा ने कूग्रां खुदवाया लेकिन पानी न निकला। उसने प्यूली पंडित† से वेद बांचने को कहा। पंडित ने शास्त्र देख कर कहा कि स्रोत के ग्रागे राक्षस जल रोके बैठा है।

सम्भै ग्रग्गें राखस वैठा, ग्रो जल दिन्दा नाईं।

पंडित ने जल निकलने का उपाय बताया—

कक्का-भूरा होयै ब्रंह्मण, सो बल लगदी भारी।

राजा के सैनिक ऐसे ब्राह्मण को ढिंढोरा पीट कर ढूंढने लगे। वीरपुर गांव का लद्धा बाह्मण ग्रपने लड़के बीरू को उनके ग्रागे मंहगे दामों पर बेच गया। बीरू ने कभी गाये चराते हुये गुरु गोरख नाथ की सेवा की थी। उन्होंने मच्छर का रूप धारण करके बीरो को समझाया कि तर्जनी उंगली को चीरा देकर लहू की बूंदें गिरा देना, कूएं में पानी उमग ग्रायेगा। बीरो ने ऐसा ही किया।

चीची ग्रौंगली चीरा दित्ता, खून राखस मूंहां जाई,
पेग्रा मूहां बिज जाई नाथ जी, नीर चढ़े गरड़ाई।

(ग) नहर में पानी न चढ़ने पर—राजे ने लाख रुपया खर्च करके एक 'कूह्‌ल' निकलवाई, लेकिन उसमें पानी न चला—संभवतः ऊंची जगह

---

† एक लोक वार्तिक चरित्र जो बेहद शैतान, होशियार ग्रौर धूर्त है। यह प्रायः डोगरी लोक-कथाग्रों व लोक-गाथाग्रों में वर्णित हुग्रा है।

होने के कारण। तब पंडित ने बतलाया कि—

कूह्‌लै दे थल्लै राजा राखस वसदा,
अड़ेआ चढना नेइयो दिन्दा वैंरी नीर।

राजा ने 'रुल्लह' नाम की अपनी पुत्रवधु की बलि देने का निश्चय किया। 'रुल्लहैं दी कूह्‌ल' नामक लोक-गाथा में इस प्रसंग का अत्यन्त मार्मिक चित्रण हुआ है।

सिरै पर इट्ट जदूं रखी ऐ वटेड़ै,
लोको चली पेआ चन्दरा नीर।

निर्माण कार्यों में प्रायः ज़िमीदोज़ राक्षस बाधा उपस्थित करता है।

2. यात्रा में बिघ्न पर—यात्रा में व्यवधान उपस्थित होने पर भी बलि का प्रचलन मिलता है। यात्रा में भूत-पिशाच-राक्षस वगैरा व्यवधान पेश करते हैं।

समुन्दरी जहाज़ के रुक जाने पर बाल-बलि का उल्लेख भी कुछ डोगरी लोक-कथाओं में हुआ है। तोता, मैंना ते गान्नी† नामक लोक-कथा में। समुद्र में फंसे जहाज़ को चलाने के लिये एक राज कुमार की बलि का उपाय बतलाया गया है। सौदागर के आदमी लड़के को उसकी पाठशाला से मिठाई का लालच देकर जहाज़ पर ले आते हैं। लेकिन लड़का अपनी बलि से पूर्व ही अपनी तर्जनी उंगली से लहू बहा कर अपने प्राण बचा लेता है।

इस लोक-कथा में हमें समुद्री जहाज़ों के मल्लाहों का यह प्राचीन विश्वास देखने को मिलता है कि समुद्र में कई बार राक्षस जहाज को नीचे से पकड़ लेते हैं।

3. नृत्य का आरम्भ होने पर—डुग्गर के पहाड़ी क्षेत्रों में कहीं-कहीं नृत्य शुरू होने से पहले भेड़ या बकरे की बलि दी जाती है ताकि गांव की 'जोगन' या किसी 'यक्ष' की कोप-दृष्टि इसमें व्यवधान उपस्थित न करे। इस प्रसंग का ज़िकर विश्वानाथ खजूरिया ने डोगरी लोक-नृत्यों सम्बन्धी एक लेख‡ में किया है।

4. मन्दिर में मूर्ति स्थापना पर—भद्रवाह के गाठा मन्दिर में मूर्तियों

---

† मनुक्ख ते परमात्मा—डोगरी लोक-कत्थां—चौथा भाग। प्रकाशक—जे० एण्ड के० कल्चरल अकादमी, जम्मू।

‡ साढ़ा साहित्य—1978, पृष्ठ—113,

की स्थापना होने पर भी नर बलि की एक दंतकथा प्रचलित है ।†

5, रोग और महामारी दूर करने के लिये—(क) किसी गंभीर रोग में मुब्तिला होने पर रोगी कुलदेवता के आगे बलि की मनौती मानता है और स्वास्थ्य-लाभ पर पशु बलि देता है। जो व्यक्ति 'जड़ियां' नामक विधि से अपने अन्दर के मसान को निकलवाते हैं उनके चेतन-प्रवाह में बाधा उपस्थित होने पर 'सौगनिया'—जो ओझा के कार्य करता है—काले मुर्गे या काले बकरे की बलि देता है ।

(ख) पशु-धन के स्वास्थ्य की जिम्मेवारी लोक मानस ने किन्हीं लोक देवताओं को दे रखी है। पशुओं में रोग फैलने पर भी बलि की मनौती मानी जाती है। कुछ लोग पांच पीरों के नाम पर नदी के किनारे बकरे की बलि देते हैं। कुछ उनके नाम पर मुर्गियां छोड़ देते हैं। पांच पीरों की एक कारक में ज़िकर है—

पीरें दे दरबार बक्करे ज़बा करो ।
पीरें मास प्यारा भिड्डू जियां बक्करें न ।
पीरें मास प्यारा, छुरियां पकड़ियां ।
पीरें दे दरबार बक्करे ज़बा करो ।
संढे छोड़ो माली दै, दुम्बे नजर करो ।

(ग) महामारी और दूसरे छूत के रोगों पर—चेचक और प्लेग के फैलने पर जन-मानस इन्हें काली माता और महामाया की कोप दृष्टि मानता है। जहां 'प्लेग' पड़े वहां 'महामाया' की मान्यता बढ़ जाती है। तवी पार बाह्वे के साथ वाली पहाड़ी पर महामाया का मन्दिर स्पष्टतया इस बात का सूचक है कि 'धारानगरी में किसी ज़माने में प्लेग का कोप हुआ था जिससे वह प्राचीन नगरी लगभग पूर्णतया नष्ट हुई और उसके बाद ही जम्मू बसा ।

बसोहली में पाह्दों के मोहल्ले में चौंड़ा देवी के मन्दिर के साथ एक दंत कथा जुड़ी हुई है। एक बार बसोहली में भयानक चेचक फैली जिससे बे-शुमार लोग मरने लगे। तब एक व्यक्ति को कालिका ने सपने में दर्शन देकर कहा कि मेरे मन्दिर की स्थापना करो और नर बलि दो तब मैं छिप जाऊंगी। इस व्यक्ति ने मन्दिर बनवाया और देवी की मूर्ति स्थापित की। कहते हैं जिस स्थान पर नर बलि दी गई मूर्ति उसी स्थान पर खड़ी है ।

---

† देखिये प्रो० मदन मोहन शर्मा का लेख—लोकवार्ता का भंडार—भद्रवाह ।

6. मनोकामना की पूर्ति के लिये—(क) किसी लड़की से शादी के लिये देवी की मूर्ति के आगे मनौती करने वाला एक युवक यह प्रण लेता है कि शादी हो जाने पर अपना सिर काट कर तेरे चरणों में अर्पित करूंगा। और वह ऐसा करता भी है।†

(ख) धन का लोभ—

(i) किसी गुप्त खज़ाने की तलाश में यक्ष को प्रसन्न करने के लिये बलि।

(ii) पीछे 'ठोक्कर' द्वारा ब्राह्मण मित्र की बलि के उपक्रम का ज़िकर आ चुका है।

(ग) सिद्धी प्राप्त करने के लिये।

(ख) खुशी के अवसर पर-जैसे ब्याह के बाद वधु के घर आने पर कुक्कड़ परेड़ने की प्रथा। इसमें यह लोक विश्वास काम करता है कि ऐसा करने से नज़र उतर जायेगी और बुरी रूहों से पीछा छूटेगा। इसके अतिरिक्त खुशी के विशेष अवसरों पर या विशेष पर्व-त्योहारों पर देवी-देवताओं के थानों पर भेड़ या बकरे की बलि दी जाती है।

7. ईर्ष्यावश—पीछे ननद-भाभी का ज़िकर आ चुका है। इसी तरह सौतिया डाह में भी विपुत्रों की बलि के अनेक प्रसंग लोकवार्ता में देखने को मिलते हैं।

मनुष्य और पशु में ईर्ष्या-द्वेश का अभूतपूर्व प्रसंग हीरा-हरण नामक गीत‡ में मौजूद है। हीरा नामक हिरण के ताने से रानी पिंयुगला उसकी जान की दुशमन हो जाती है और उसे राजा भरतरी से मरवा डालती है।

8. देश व मानवता की भलाई—इस सबब से दी गई आत्म-बलि को बलिदान कहा गया है। यह उत्तम बलि है। इसमें सब के कल्याण की भावना है। बलिदान किसी उच्च आदर्श के लिये स्वेच्छा से जीवन त्यागने का दूसरा नाम है।

'संगत चौथ'* कहानी में वर्णित है कि देश में भयंकर अकाल पड़ने पर एक महात्मा को सपना आया कि तपती भट्टी में किसी व्यक्ति की बलि दो

---

† 'बक्कै दी नकेल'—बनें दियां मिंजरां, पृष्ठ—217

‡ डोगरी लोक गीत—भाग–1, पृष्ठ—217

* नन्दै दा कड़शा—पृष्ठ–184

तब वर्षा होगी। कुछ पंक्तियां यहां उद्धृत की जाती हैं—

"...जिसलै ओ त्री बारी धर्म दे नां दी दुहाई देइयै लोकें गी बलि देने ग्रास्तै आखने गी उठ्ठे तां इक पन्जें-छें ब'रें दा बालक द्रोड़दा उंदे अग्गें आई खड़ोता ते आखन लगा—म्हातमा जी, मुल्खै दी भलाई आस्तै आऊं अपनी बलि देई ओड़नां। तुस मिगी अज्ज गै घम्यारै दे तपदे आवे च रक्खी ओड़ो।"

देश की खातिर युद्ध में प्राप्त वीर-गति भी बलिदान की कोटी में आती है।

अन्त में पुनः बलि के सम्बन्ध में सरसरी चर्चा कर ली जाये। डा० प्रियतम कृष्ण कौल के कथनानुसार—"भय और शंका के कारण ही कई लोक-देवों की कल्पना हुई होगी। राक्षस या देवते की तुष्टि के लिये आदमी की बलि दी जाती थी...।"†

परन्तु डोगरी लोक वार्ता में ही ऐसे सैकड़ों प्रसंग है जिन में दिखाया गया है कि नर-बलि देने वाले का सर्वनाश होकर रहता है और यह कि हत्या प्रकट होकर रहती है। लोक-मानस ने बलि और हत्या के बारे में अनेक वर्जनाओं की अवधारणा भी कर रखी है। बावा थोलू की कारक में ही वर्णित है—

गौ-ब्राह्मण दी हत्या राजा, युग-युग मिटदी नाईं।

□

† भद्रवाई लोकवार्ता—इक सर्वे (साढ़ा साहित्य-1978)

कश्मीरी लोक-कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन

—डा० निज़ामुउद्दीन

लोक-कथाओं की परम्परा भारत में वैदिक साहित्य से मिलती है। ऋग्वेद और उपनिषदों में अनेक राजाओं, देवताओं के प्रसंग इसका ज्वलंत प्रमाण हैं। आदि मानव संसार के रहस्यों को और प्रकृति के रूप को जानने और समझने का प्रयास करता था। फ्रेज़र ने यह बात स्वीकार करते हुए कहा कि मनुष्य की प्रारंभिक जिज्ञासावृत्ति की संतुष्टि लोककथाओं द्वारा हुई है। लोककथा को मैक्समूलर ने प्राकृतिक मिथ का एक दृष्टान्त माना है। लोककथाओं में वैज्ञानिकों की भी रुचि कम नहीं रही। चन्द्र-ग्रहण या सूर्य-ग्रहण से संम्बन्धित कितनी ही लोककथाएँ हैं, उनके आधार पर वैज्ञानिक प्रकृति के अज्ञात रहस्यों को समझते आये हैं। इतना ही नहीं, वरन नृ-विज्ञान, समाज-विज्ञान जैसे समाजशास्त्रों का उद्गम इन लोककथाओं में पाया जाता है। मानव जाति के विकास का, रीति-रिवाजों का, गतिविधियों का, संस्कृति का, परम्पराओं का, मान्यताओं का, अंधविश्वासों का विकास-रूप इन लोककथाओं के आधार पर समझा-परखा जा सकता है। लोककथाओं में सम्पूर्ण सृष्टि का अभिनिवेश होता है। ऋतुओं के बदलने के साथ उनमें परिवर्तन होता है, देवी-देवता मनुष्य की सहायता कठिन आपदाओं में करते हैं, पशु-पक्षी तक अपना-अपना योग पूर्ण कुशलता से देते हैं। जादू-टोना, अंधविश्वास, अति-प्राकृतिक तत्व सभी कुछ यहां देखने को मिलते हैं।

टी० बैनफैसी की मान्यता है कि योरुप में जो लोककथाएँ प्रचलित हैं उनका जन्म भारत में हुआ। 'कथासरित्सागर' (सोमदेव), पंचतंत्र (विष्णुशर्मा) और जातक माला की कथाओं से देश-विदेश की लोककथाएँ

अत्यधिक प्रभावित हैं। भारत के विभिन्न प्रदेशों में जो लोककथाएँ प्रचलित हैं उनमें अनेक प्रसंग, घटनाएँ एक जैसी हैं, थोड़ा-बहुत परिवर्तन स्थानीय रंग के कारण दर्शनीय है। फ्रांस, चीन, मिस्र, स्वीडन, जापान आदि की लोक-कथाओं में पारस्परिक एकता मिल सकती है। बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष कोई ऐसा नहीं जिसे लोककथाएँ प्रिय न हों। बहुधा मूसलाधार वर्षा के समय, सर्दी की रातों में अलाव तापते हुए लोककथाएँ कही-सुनाई जाती हैं। बच्चों को ये कहानियाँ बहुत प्रिय होती हैं। कश्मीर की लोककथाओं में यहाँ के रीतिरिवाजों का, ऋतुओं का, रहन-सहन का, सभ्यता-संस्कृति का, अंधविश्वासों का धार्मिक भावना का, तीज-त्योहारों का वृतान्त मिलता है। स्मरणीय है कि ये कथाएँ कुछ परिवर्तन के साथ दूसरे प्रदेशों में भी प्रचलित हैं। कुछ लोककथाएँ कश्मीर में ऐसी हैं जो सर्वाधिक लोकप्रिय हैं जैसे "हीमाल नागराय", 'शबरंग' अकनन्दुन, 'मानुट' आदि, ये अभी तक अपने प्राचीन रूप को संजोए हुए हैं। इन कश्मीरी लोककथाओं में यहां के लोगों की धार्मिक भावना, रीतिरिवाज, अंधविश्वास, अतिप्राकृतिक तत्वों और जादू-टोने में विश्वास, साँस्कृतिक रंग का चित्रण किया गया है। चिल्लाकलान (दिसम्बर-जनवरी) की अत्यधिक शीतल रातों में, शीन (वर्फ) के अविरल गिरते समय बिना कहानी सुने-कहे कौन रह सकता है?

हीमाल-नागराय ऐसी प्रेम कहानी है जो अति प्राकृतिक तत्वों से भरी पड़ी है। नागराय का अर्थ है सर्पराज, नागराज। नागराय का युवक के वेश में राज कुमारी हीमाल से विवाह हो जाता है, लेकिन समय निकाल कर नागराज तालाब में प्रवेश कर अपनी रानियों के पास पाताल में बने महलों में जाता रहता है। एक बार हीमाल भी नागराय के विरह के कारण खोजती-फिरती वहीं महल में पहुंचती है। नागराय ने उसे जादू से एक चमकदार हीरा बना दिया, फिर भी उस की रानियों को 'मानस-गंध' आई, उन्हें संदेह हुआ। इस कहानी के अन्त में एक युवक जब सोई हुई हीमाल के सन्निकट नागराय को देखता है तो उसे मार डालता है, जिसे बाद में एक साधु जीवित कर देता है। अकनन्दुन' में भी इसी प्रकार एक साधु के चमत्कार का वर्णन मिलता है। एक निःसंतान दम्पत्ति को पुत्र होने का आशीर्वाद साधु इस शर्त पर देता है कि उसे बारह वर्ष का होने पर वे साधु को लौटा देंगे। निःसंतान व्यक्ति सन्तान का मुख देखने के लिए क्या नहीं कर सकता? उन्हें साधु की सब शर्तें मान्य होती हैं। खैर, यहां निःसंतान राजा-रानी प्रसन्नता से फूले

न समाये। जब कुछ समय बाद उनके घर में सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ तो राजा ने खूब दान दिया, जश्न मनाया। लड़का बड़ा होता गया, उसकी शिक्षा-दीक्षा सुचारु रूप से चल रही थी। प्रजा भी खुश थी कि उसको भावी शासक मिल गया। मगर जैसे ही बारह वर्ष का समय बीता, तुरन्त वह साधु महल में प्रविष्ट हुआ और अकनन्दुन को मांगा। राजा-रानी के चेहरे निष्प्रभ हो गये, महल में एक कोहराम मच गया। पर किया क्या जाए! आखिर में साधु अकनन्दुन के हाथ-पैर बंधवा कर राजा के हाथों उसका वध कराता है, रानी से उसका मांस पकवाता है, और फिर खाने के लिए **5-6** मिट्टी के प्यालों में रखवा कर रानी से कहता है कि अकनन्दुन को बुलाओ। इस पर रानी क्रोध और रोष में साधु को लांछित करती है, मगर वह शांत-भाव से रानी से आग्रह करता है कि वह अकनन्दुन को आवाज़ दे और जैसे ही 'अकनन्दुन' कह कर ज़ोर से रानी ने पुकारा तो "आया मां" कहता हुआ सब के सामने वह आकर खड़ा हो गया। रानी एकदम से उस से लिपट गई, प्रेमातिरेक में उसे बाहों में भर लिया, बार-बार उसे प्यार करने लगी और जब साधु की तरफ देखा तो न वहां कोई साधु था और न वे प्याले ही। यह चमत्कारी साधु का चमत्कार था जो इस प्रकार की लोक कथाओं की शक्ति हुआ करता है। ऐसे साधुओं और पंडित-पुरोहितों की भी कमी नहीं जो स्वार्थी और ढोंगी होते हैं। वे उसी प्रकार की क्रियाएं करने के लिए जन-साधारण को प्रेरित करते हैं जिन से केवल उन्हें ही लाभ पहुंचे। एक अन्य कथा एक ऐसे व्यवित की कहानी है जो माता-पिता की मृत्यु के वाद साधु हो गया। गांव के लोग यों भी अति सरल और निष्कपट स्वभाव के होते हैं। उस साधु का उन लोगों पर काफी प्रभाव और आतंक था। उस की आज्ञा के विना कोई काम वे नहीं करते थे। शादी-विवाह तो उसकी इच्छा से ही सम्पन्न होते थे। वर-वधू को उसका आशीर्वाद मिलना शुभ माना जाता था। कोई नहीं चाहता था कि साधु की भृकुटी टेढ़ी हो, वर या वधू को उसके अशुभ परिणाम का सामना करना पड़े। किसी गांव में एक युवक अपनी वृद्धा मां के साथ रहता था। वे एक बार तीर्थ यात्रा पर गये, जहां मां ने अपने पुत्र के लिए एक सुशील वधू पसंद की। लड़की के माता-पिता भी विवाह के लिए राज़ी हो गये और साधारण रूप में विवाह कर दिया गया। घर लौट कर वृद्धा स्त्री ने पुत्र के विवाह की खुशी में गांव के लोगों को प्रीति भोज दिया और साधु को भी आमंत्रित किया। मगर साधु ने आशीर्वाद के स्थान पर वधू को अभिशाप दिया कि इस लड़की को

घर से बाहर निकालो, नहीं तो सब घर नष्ट हो जायेगा। साधु की आज्ञा से आभूषण, वस्त्र आदि के साथ एक लकड़ी के सन्दूक में बन्द कर नव-विवाहिता वधू को नदी में धकेल कर उसे उसके भाग्य पर छोड़ दिया गया। रास्ते में उस संदूक को एक आदमी के द्वारा बाहर निकाला गया जिस से वधू ने अपनी दुखद कहानी सुनाई। उस व्यक्ति को साधु की चाल समझ में आई। उसने वधू के स्थान पर एक बन्दर को बन्द कर संदूक को पुनः नदी में छोड़ दिया। अपने अनुमान के अनुसार कुछ दूर एक स्थान पर साधु उस वधू के संदूक की प्रतीक्षा कर रहा था। मगर जैसे ही साधु ने संदूक बाहर निकाल कर खोला तो बन्दर एकदम से उस पर झपट पड़ा और साधु को घायल कर दिया। इस प्रकार उस लालची, ढोंगी साधु को अपने किये का फल मिला और समाज में उसकी धूर्तता और प्रपंचता स्पष्ट हो गई। तब से कश्मीर में कहावत प्रसिद्ध है—'बटकार, घटकार' अर्थात् पंडितों की पंडिताई बहुत बुरी है।

इन लोककथाओं में जन-जीवन के सभी रूपों पर प्रकाश पड़ता है। ाचीन काल में लोग बहुत ही सरल, निश्छल होते थे। गांव के लोग तो बहुत ही सीधे होते थे। एक बार वुलर झील के निकट किसी को कोई चांदी का सिक्का मिला, उस पर एक ओर सम्राट का चित्र भी था। लोगों ने उस नायाब वस्तु को उपहार के रूप में शहर जाकर राजा को देने का निश्चय किया, और कुछ व्यक्ति धूमधाम से, डोली सजा कर, उस में चांदी का सिक्का रख कर राजा के पास पहुंचे। राजा उन की इस बुद्धिहीनता पर, सरलता पर खुश हुआ। इस से भी अधिक सीधेपन का रूप "पांजू" और "मानुट" नामक दो भाइयों की कहानी में परिलक्षित होता है। पांजू का विवाह होने वाला है, घर पर अतिथिगण आये हुए हैं, उसने अपने छोटे भाई मानुट को नगर से कुछ सामान खरीद कर लाने भेजा, मगर वह शाम तक नहीं लौटा। चिंताकुल पांजू उस की खोज में निकला और गांव से कुछ दूर उसे खाली हाथ आते देखा। पूछने पर मानुट ने बतलाया कि उसने चीनी एक चश्मे में डाल दी क्योंकि वह प्यासा था और चश्मे का खारा पानी उस से पिया न जा रहा था। नमक उसने खेत में पशुओं के लिए डाल दिया और तेल अपने खेत की फटी दरारों में भर दिया ताकि वे बन्द हो जाएं, क्योंकि उसके पिता ने कठिन परिश्रम से उस खेत को बनाया था। कैसी मूर्खता थी मानुट में ?

कश्मीर की लोककथाओं में यहाँ की टिपिकल वेश-भूषा 'फिरन' का खूब वर्णन मिलता है। 'फिरन' लम्बा, ढीला चौगा-सा होता है जिसे यहाँ

के लोग हमेशा पहनते हैं। 'कांगर' या 'कांगड़ी' का भी वर्णन किया जात
है, इसी से कश्मीरी लोग सर्दियों में अपने शरीर को गर्म रखते हैं और उं
'फिरन' में रखकर कड़ाके की सर्दी में भी सभी काम करते हैं। खाने-पी
की वस्तुओं में मांस से बनी स्वादिष्ट डिश का भी उल्लेख मिलता है, जै
गुश्ताबा, रोगन जोश, कबाब, कबरगाह, तबक माज, आदि की खूब चर्चा क
जाती है ।

कुछ मुहावरे इन्हीं लोककथाओं के कारण आज भी खूब प्रचलित हैं जैसे—

ज्यादा कथन न सूद—अधिक कहने से क्या लाभ ?

चीरछु कंडथरी पैठ करार—चिड़िया को उसी समय चैन मिलता है ज
वह अपनी टहनी पर बैठी होती है ।

गुरुस यार, कायुर नार—गाँव वालों की मित्रता क्षणिक होती है, कायु
(लकड़ी विशेष) जल्दी से जल जाती है, न उसर
उष्णता मिलती है, न कोयला मिलता है ।

हाकिमस त हकीमस निश रचतम खुदायी—या खुदा । मुझे हाकिमों
(अफसरों) और हकीमों से बचा ।

खारस ताजिल त नायास तातिल—शुभ जल्दी करो, बुरा देर से करो।

गबि बुथि रामहुन—भेड़ की खाल में भेड़िया ।

कुछ विचित्र या विशिष्ट शब्दावली आज भी व्यवहृत है; 'मरला', 'कनाल' (जमीन की नाप का विशेष टुकड़ा) खरवार (तोल विशेष), 'बांगिल' (गुलमर्ग या पश्चिम का भाग), 'मराज़' (कश्मीर के दक्षिण का भाग), 'कमराज' (कश्मीर के कुछ उत्तर में) 'तिलेल' (कश्मीर के उतर का भाग, गुरेज़ की ओर), 'डार' या 'हाड' (फसल की कटाई का मौसम) 'मुशकबदुज' (सुगंधित चावल) 'कुटकुल' (पुराने सचिवालय से बड़े अस्पताल के पास बहने वाली नहर), 'चुंटकुल' (गऊकदल और दुबज्ञा के बीच बहने वाली नहर) आदि ऐसे ही कुछ विशिष्ट शब्द हैं ।

बिना ठगों का उल्लेख किये लोककथाओं की चर्चा फीकी पड़ जाती है। कश्मीरी लोककथाओं में भी ठगों की ठगाई-सफाई समने आती है। यहाँ दो प्रसिद्ध ठगों का वर्णन मिलता है एक है—'टोह ठग' (भूसे का ठग) दूसरा है 'मींगन' का ठग। दोनों इधर-उधर क्रय-विक्रय करते थे। एक दिन एक हाट (वाजार) या मेले में गये। दोनों अपने-अपने व्यवसाय में माहिर थे, कुशल थे। एक के पास सूखी मिर्चें थीं, दूसरे के पास जाफरान या केसर थी। दोनों

अपनी-अपनी वस्तु की शुद्धता की प्रशंसा करते थे। एक फारसी में कहता—

"मुश्क आनस्त कि खुद बिबोयद न कि अत्तार गोयद।"

अर्थात् सुगंध अपने अस्तित्व को स्वयं प्रकट करती है, कहने की जरूरत नहीं दूसरा, इसके उत्तर में बोलता—'गंदुम नुमा जौ फरोश' अर्थात् गंदुम (गेहूं) की शक्ल के जौ बेचने वाला।† ऐसे व्यक्तियों से, ठगों से सावधान रहना चाहिए। परन्तु दोनों ठग एक दूसरे को ठगते हैं। एक ने मिर्चों की बोरी में धान का भूसा भर रखा था और बोरी के मुंह पर ऊपर कुछ मिर्चें रख रखी थीं। दूसरे ने केसर के थैले में ऊपर कुछ और तथा नीचे भेड़ की मींगन भर रखी थीं। दोनों ने एक दूसरे का माल ख़रीद लिया और घर जाकर दोनों एक दूसरे की कुशलता को समझ गये। बाद में 'टोह ठग' और 'मींगन ठग' से वे जाने-जाने लगे।

ऐसे जादू के प्याले, थैले, डंडे आदि का वर्णन अन्य प्रदेशों की लोक-कथाओं में भी मिलता है जिस से मांगने पर स्वादिष्ट भोजन; तरह-तरह के व्यंजन निकल आते थे। कश्मीरी लोक कथा में ऐसे जादू के कप की चर्चा है जिसे एक योगी ने कई दिन के भूखे-प्यासे मनुष्य को दिया था ताकि वह स्वयं आराम से खा-पी सके, अपने परिवार को भी खिला-पिला सके। मगर घर आते हुए रास्ते में रात होने पर वह जिस सराय में ठहरा था उसकी भटियारन ने उसे उठा लिया था और नकली प्याला, थैला आदि रख दिया था। बाद में योगी को अपनी योगसाधना से भटियारन की ठगी का पता चल गया और तब उस निर्धन व्यक्ति को उसने डंडा दिया जिस की जादू भरी पिटाई से भटियारन ने असल वस्तुएं दे दीं। ऐसी कहानियों से जहां जादू के प्रचलन का, योगी या सिद्ध की करामातों-चमत्कारों का पता चलता है वहां तत्कालीन दरिद्रता और निर्धनता का ज्ञान भी होता है कि उस समय मनुष्य एक जून रोटी जुटाने में कैसा असमर्थ था।

कश्मीर की लोककथाएं बहुत ही रोचक और मनोरंजक हैं। उनमें कश्मीर के जन-जीवन की विभिन्न झांकियों की झलक मिलती है। गांव में सीधे-सरल (मूर्ख भी) लोग भी हैं और धूर्त ठग भी हैं। पहुंचे हुए साधु-संन्यासी भी हैं और लोभी-लालची पंडित-पुरोहित भी। इन से यह भी पता चलता है कि प्राचीन काल में गांव, नगर, महल सर्वत्र चोरी की घटनाएं घटित

† या हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और।

होती थीं। राजा वेश बदल कर इधर-उधर रात्रि में घूमता था और अपनी प्रजा के सुख-दुख का ध्यान रखता था। लोगों की धर्म में आस्था थी। वे तीज-त्यौहार और पर्व सोल्लास मनाते थे। अनेक व्यवसाय के लोग रहते थे और सिक्का गांव में कम देखा जाता था, अधिकतर लोग जिन्स के बदले जिन्स खरीदते-बेचते थे। शादी-विवाह धूमधाम से होते थे, सम्बंधियों को प्रीति-भोज दिया जाता था। राजा लोग गंधर्व विवाह, बहुपत्नी-प्रथा में विश्वास रखते थे। निःसंदेह कश्मीरी लोक-कथाएं सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से पठनीय हैं, ज्ञानवर्धक हैं, अभिरोचक हैं।

□

मंघा

—डा० प्रियतम कृष्ण

अनेक प्रदेशों की लोकवार्ताओं के अध्ययन से यह बात देखने को मिलती है कि लोगों के कई रोचक लोक-प्रचलित नाम होते हैं। ऐसा ही एक लोक नाम "मघा", मंघा, अथवा मंगा भी है जो डोगरी-पहाड़ी और कश्मीरी क्षेत्र में समान रूप से प्रचलित है। मंघे अथवा मंगे का यह नाम चाहे मंगत राम का लघुरूप हो, चाहे मंगत दीन या मंगत मुहम्मद का परिवर्तित रूप या चाहे मगर मल का प्रिय सम्बोधन पर एक बात तो स्पष्ट है कि पहाड़ी क्षेत्र में यह नाम बहुचर्चित और बहुवर्णित रहा है। इसी मंघे के नाम पर ही पहाड़ी लोक-गीतों की एक शैली भी चल पड़ी है। भद्रवाही लोक गीतों में जिन लोक गीतों को हम शुकली गीत कहते हैं उन्हें ही सिराजी में घार्ता अथवा मंघो कहा जाता है। हिन्दी दोहा अथवा पंजाबी माहिया की तरज के दो पंक्तियों वाले इस गीत का नाम, सिराज क्षेत्र में मंघो पड़ने का कारण शायद यह रहा हो कि इस प्रकार की बहुत सी शुकलियों और घातियों में मंघे का ही हास्यप्रद और विनोदपूर्ण चित्रण हुआ मिलता है।

इन लोक गीतों में मंघा एक हास्य और शृंगार रस से युक्त नायक के रूप में चित्रित हुआ है। वह हंस कर और हंसा कर जीता है और इसी कारण उसने गांव की युवतियों के मन को मोह लिया है। सभी प्रेमिकाएं उसे चाहती हैं। वह उन के लिए दिन का प्रकाश और रात्रि का सुख चैन है। वह पर्वतीय गोपियों का कृष्ण है। गांव की प्रत्येक ग्वालिन और प्रत्येक गोपिका उसे चाहती है क्योंकि वह ठिगना है, सुन्दर है, हंसमुख है, प्रेमी है, रसिक भी है, शिकार को जाता है और ज़ाट्ल और कोड्डों (लोक त्योहारों) पर झुक-झुक कर नाचता भी है—

बोंते रि बेनि आन लम्मे छोटड़े खेड़े,

रोठो मेरो मंघो मझ़झ़ शोमेलू सेइज़े ।
छेतङू निद्दू कनेलङू शोले,
पूरनी ग्राई जाट्ल मंघो लिकी-लिकी नच्चे ।

(बोंत गांव के जंगल के वृक्ष लम्बे और छोटे भी हैं पर मेरा प्रिय मघा तो ठिगना सा है अतः कमर बन्द पहन कर तो वह और भी सुन्दर लगता है। हम ने छोटे खेत की निदाई कर दी पर बड़ा खेत अब भी सूखा है, पूरनी गांव के लोक त्योहार में मंघा आया और झुक-झुक कर नाचता रहा)।

और मंघे के इस झुक-झुक कर नाचने ने गांव की गोरियों का दिल ही चुरा लिया। मंघा केवल नाचता ही नहीं वह शिकार करने भी जाता है। नील पक्षी को तो उस ने मारा अवश्य पर अपने शिकार पर झपटते हुए उस का पैर फिसल गया, कपड़े कांटों में उलझ कर तार-तार हो गए और टांगें झाड़ियों में अटक गई। गांव की युवतियों को मंघे की यह दशा मालूम हुई तो उन्हें उस पर तरस भी आया और हंसी भी। बेचारा ठिगना मंघा!

मंघो जोरो शिकारे तेनी मारोरे नीले,
पड़ फस्सोरो करेरी ज़ंघा फस्सोरी ज़ीले।

मंघा शिकार को गया है और प्रेमिका उसका रास्ता देखती रहती है उसे सूझ नहीं रहा कि मंघा किस रास्ते से लौटेगा—

सितड़ी द सल्ली ते त शिंगा केरी ढेरी,
मंघो जोरो शिकारे अब कोस्स बता हेरीं।
सितड़ी द सल्ली ते त शिगोडी ढेरी,
सत मेरे मंघे रि वत्तां अंव कोस्स बता हेरों।

(श्वेत बकरी सींगों की ढेरी-सी लग रही है, मेरा मंघा शिकार को गया है उस के आने के रास्ते सात हैं, मैं किस रास्ते से उस के आने की राह ताकती रहूं)।

मंघा चाहे जैसा भी हो पर यह निश्चित है कि पहाड़ी गांव की प्रेमिका उसे अपना दिल दे बैठी है और इसी कारण वह कव्वे से प्रार्थना करती है कि हे काग! तू मंघे के गांव जाकर उसे मेरा कुशल समाचार भी देना और मेरा "गल्ले मिलना" भी कहना। साथ में यह भी कह देना कि मैंने केशों का संवार लिया है और इसी कारण मेरी चोटी कुछ चमक गई है, उसे कह देना कि वह मैदान के नीचे की ओर चला आए।

मंघा हृदय हीन नहीं, वह रसिक है और उन्मुक्त प्रेम की बातें खूब

समझता है और सन्देश पाकर प्रिया से मिलने भी पहुंच जाता है। प्रिया उस से बड़ा बिछावन देने और द्वार को अधखुला रखने की बात निसंकोच भाव से कहती है—

सूनेरू गुंठो करेरो हारे,
खुलो देइयां मंघा बिछान डिरडेबरू रेखां दारे।

मंघा परदेस जा रहा है। प्रिया मंघे से अनुरोध करती है कि परदेस में न तो उसे अधिक चिंता ही करनी चाहिए और न अधिक बार दाड़ी ही बनानी चाहिए। अन्यथा उसके सुन्दर चेहरे पर झुरियां पड़ जाएंगी।

छित्तड़ू त मज़झे, काले त दित्तोरे डोरे,
शेवां त फिकरां न देइयां मंघा, तुतरे बरज़ली कोरे।

एक कहावत है कि प्रिय व्यक्ति की हर बात प्रिय लगती है। मंघा अब घर पर नहीं अतः उसके बैलों की देख-भाल तो उस की प्रिया को ही करनी पड़ेगी।

घुपड़ी त तपी, त धुपारी रन्ने,
डलुखेरे मेरे मंघे रे दांत, तेन खोल्ली छड़ने बने।

(अब धूप तप गई है और दुपहर होने जा रही है। मेरे मंघे के बैल भूखे हैं, उन्हें अभी वन में छोड़ने जाना है)।

प्रिया बेशक मंघे से और मंघे की वस्तु से प्रेम करती रहे पर मंघा रसिक है, भंवरे की तरह जगह-जगह गुंजारता फिरता है और फूल-फूल का रस पीता है। पर प्रत्येक प्रेमिका यह कहां सह पाती है कि उसका प्रेमी किसी अन्य से भी प्रेम करे। ऐसे में उस का डाह देखते ही बनता है—

सुंगले रे चाना, नाले खोले रे गूआं,
जगते सडोरे ज़ठां, मंघे उपोभना भूआं।
नाइ ते शिआई आए शोकड़ू घाने,
मरे मंघे रि ट्लारी चुके मेरी छेती रि काने।

(सुंगली गांव का चान फल और जहां तहां की गंदगी दोनों इक समान हैं। पर न जाने क्यों जिन स्त्रियों को लोगों ने गंदी और हीन समझ छोड़ दिया वही मंघे को भली क्यों मालूम हो रही हैं)।

''छोटे खेत में इस बार धान कुछ कम ही उगा है, यदि मंघे की प्रिया—प्रथम प्रिया की सोत—मर जाती तो मेरे हृदय की हूक भी कुछ कम हो

जाती" और—

पेदरी दे धारी तेत चुरुड़ू नागे,
मेरो त सुधारेरो मंघो कोस्स रडारे भागे।

(पदरी धार पर छोटा सा चश्मा है। मेरे सुधारे हुए मंघे को न जाने कौन दुश्चरिता फंसा ले गई)।

प्रिया चाहे जो भी कहे पर इस से क्या ? उसे मालूम है कि उसी की तरह कितनी कलियों ने भंवरे की गुंजार सुन कर अपने मधु कलशों को उसे समर्पित कर दिया। वह भी समर्पिता है, भोली सी समर्पिता ! भंवरा लौट न आए पर भंवरे की याद तो कली को आती रहेगी। पर प्रतीक्षा की भी कोई सीमा होती है अन्त में प्रिया निराश हो जाती है। केवल मंघे से प्रेम मिलन की पुरानी यादें आ आकर उसे सताती हैं। अब यही उस के जीवन का अवलम्ब भी है।

सुकली त जोइ, ते त हुकली भुइ ए,
मेरी त तेरी ठेरी मंघा कत्थी त किम्बली भुई ए।

"मैंने शुकली गाई और मेरा हृदय व्यथित हो उठा, रे प्रिय मंघा ! मेरे और तुम्हारे मिलन स्थानों पर अब कत्थी और किम्बल की कंटीली झाड़ियां उग आई हैं।"

ओकड़ी हंठी ओडंड़ी मुक्की,
आव ट्लारे मंघे रो चेतो द्लुख लग्गोरी चुक्की।

"कठिन रास्ता दूर हुआ उतराई भी समाप्त हुई। प्यारे मंघे की याद आते ही मेरी सारी भूख भी जाती रही।

हेरी हेरी त हुट्टी तेरे मुल्खेरां झल्लां,
कैंचे बिसरी मंघा तेरी हिखली गलां।

"रे मंघे ! मैं तुम्हारे देश की झाड़ियों को देख-देख कर थक गई हूँ। रे प्रिय ! मैं भला तुम्हारी हकलाती मीठी बातों को कैसे भूल सकती हूँ।"

□

डोगरी लोकगाथा 'बार'

—अशोक जेरथ

'लोकगाथा' अंग्रेजी शब्द 'बेलेड' के पर्यायवाची के तौर पर लिया जाता है। जिस का मोटे तौर पर कथात्मक गीत अर्थ लिया गया है। लोक गाथा नालन्दा विशाल शब्द सागर के पृ० 1220 के अनुसार जनश्रुति, प्रचलित गीत आदि के रूप में दी गई है। गाथा का अर्थ 'बखान करना' मोटे तौर पर लिया जा सकता है। डोगरी लोक साहित्य में लोकगाथा के दो स्पष्ट और संक्षिप्त भाग कर दिए गए हैं—'कारक' और 'बार'। जहां कारक कहीं न कहीं धर्म तथा अलौकिक शक्तियों के साथ जुड़ी है वहां 'बार' पौरुष की गाथा कही जा सकती है।

'बार' शब्द की उत्पत्ति और अर्थ पर अनेक विवादास्पद प्रयास इधर हुए हैं विशेष रूप से साढ़ा साहित्य 1978 के पृष्ठ 40 पर प्रोफेसर निर्मोही 'बार' की उत्पत्ति 'प्रवार' मालवा—प्रबन्ध गीतों से मानते हैं जिस से 'प्र' उपसर्ग हटाने के बाद 'बार' डोगरी में प्रवेश कर गया है। यहां प्रश्न उठता है कि 'प्र' उपसर्ग कब, क्यों और कैसे हटा? दूसरी बात कि पंजाबी, पहाड़ी, हरियाणवी, राजस्थानी, हिन्दी, संस्कृत आदि के शब्दों से 'बार' की उत्पत्ती तो मानी जा सकती है किन्तु मालव के लोकगीतों का सन्दर्भ किस आधार पर लिया जा सकता है? 'प्रवार' शब्द इतनी दूरियां लांघ कर कैसे डोगरी में आकर 'बार' बन गया? इसके बारे में उनका लेख चुप है। दूसरे सन्दर्भ में वे संस्कृत के 'प्रवाह' तथा 'प्रवाद' शब्दों से 'बार' की उत्पत्ति मानते हैं—यहां तो उपसर्ग और प्रत्यय दोनों ही हटाने पड़ेंगे।

'बार' शब्द का लिखित प्रयोग सर्व-प्रथम सन् 1774 ई० में कवि केशवदास द्वारा रचित काव्य "महाराज अमरसिंह की बार" में मिलता है जिस में पटियाला के महाराजा अमरसिंह के युद्ध कौशल का जिक्र हुआ है। यह बात

इस ओर संकेत करती है कि 'बार' अपने में ऐतिहासिकता और वीर रस को समेटे होती है। (पटियाला में रचित वीर काव्य : पृ० 74)

'बार' शब्द की उत्पत्ति निश्चय ही 'प्रवाह', 'प्रवाद' आदि शब्दों से न होकर संस्कृत के शब्द 'वारनम्' से हुई है। वारनम् शब्द का अर्थ—पीछे हटाना, पीछे धकेलना, रोकना आदि लिया जाता है। इसी का हिन्दी रूप वारन / बारण अर्थात निषेध / मनाही / रुकावट, बाधा / कवच और छप्पय छंद का एक भेद लिया जाता है। (नालन्दा—विशाल शब्द सागर पृ० 972)। 'बार' में भी शत्रु को पीछे धकेलना, रोकना, हटाना आदि क्रियाएं होती हैं। 'बार' शब्द अपनी सम्पूर्णता के साथ हिन्दी में प्रयुक्त होता है जिस का शाब्दिक अर्थ द्वार, दरवाजा अथवा रोक/बाढ़ आदि होता है। अतः दोनों को समन्वित कर—'बारन' और 'बार' सीधे से डोगरी 'बार' का अर्थ द्वार अर्थात् सीमा (देश का द्वार) पर रोक हो सकता है। जिस में निश्चय ही वीर रस का प्रयोग होगा। ऐसी गेय कथा जिस में वीर रस का प्रयोग हो और जिस का आधार कोई ऐतिहासिक घटना हो (बाद में जन-श्रुति के आधार पर अनेक परिवर्तन उसमें हो सकते हैं) डोगरी में 'बार करना' एक मुहावरा प्रयोग किया जाता है जिस का अर्थ हमला करना होता है। इस तरह लोकगीत (भाग दो) के सम्पादकीय में दी गई 'बार' की परिभाषा उचित ही है। किन्तु जहां तक संकलित बारों का सम्बन्ध है उनका चयन उचित अथवा उपयुक्त नहीं है अतः प्रो० रामनाथ शास्त्री को अपने लेख (साढ़ा साहित्य 1978 : पृ० 22) में इस ओर संकेत करना पड़ा। मैं उनसे पूरी तरह सहमत हूँ कि इस संग्रह में छपी छः बारों में से कोई भी इस व्याख्या और परिभाषा पर पूरी नहीं उतरती। वास्तव में जिन महापुरुषों को केन्द्र मान कर ये गाथाएं रची गई हैं उनका सम्बन्ध डुग्गर धरती से दूर का भी नहीं है।

राजा मंडलीक को गुग्गे पीर के रूप में राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, कुल्लू, चम्बा, पंजाब आदि स्थानों पर पूजा जाता है। अपने चमत्कारपूर्ण कारनामों के कारण लोकगायकों के आकर्षण का केन्द्र बन कर चाहे वह डोगरा धरती पर चला आया हो किन्तु उसकी पृष्ठभूमि को इस धरती पर 'ट्रेस' नहीं किया जा सकता। 'ढोल बादशाह'—ढोल नामक राजकुमार के जीवन पर आधारित कथा है जिस का डोगरा बेल्ट के साथ दूर का भी सम्बन्ध नहीं। 'लक्ष्मनदा जोग' लक्ष्मण की यौगिक क्रियाओं का वृत्तान्त मात्र है—'राजा हौंस' और मीरदास चौहान आदि भी डुग्गर वासी नहीं। 'राजा होडी' पर संकलित

तथाकथित बार राजा रसालू के वीरता पूर्ण कारनामों की गेय कथा है जिस का सम्बन्ध भी डुग्गर धरती से नहीं हो सकता।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि फिर 'बार' कौन सी है? कौन सी नहीं? क्या डोगरी लोक साहित्य में 'बारें' हैं भी कि नहीं? उपर्युक्त तथाकथित 'बारें' निश्चय ही बारें नहीं हैं—इन्हें प्रबन्धगीत, गेयकथा आदि लोकगाथा की साधारण परिधि में तो बांधा जा सकता है पर 'बार' नहीं कहा जा सकता। दूसरी बात जो मन को कोंचती है कि यह कैसे हो सकता है कि 'बार' की परिभाषा और व्याख्या तो ठीक हो किन्तु उनका संकलन ठीक न हो? बड़ी साधारण बात है—लोकगायक परिभाषा तो जानते होंगे किन्तु कालान्तर में 'बारों' को भूल गए होंगे अथवा अकादमी को वे 'बारें' उपलब्ध ही नहीं हुई होंगी।

इधर प्रयास से मैं कुछेक 'बारों' को रिकार्ड करने में सफल हुआ हूँ जो न केवल एक सेतु का कार्य करेंगी अपितु 'बार' की परिभाषा, व्याख्या और विशेषताओं पर सुलभ दृष्टि डाल कर उनके पूरे वर्ग की परख में भी सहायक होंगी।

'राजा रणजीत देव दी बार' (पांच टुकड़ों में विभाजित, प्रत्येक टुकड़ा अपना अलग अस्तित्व रखता है) 'मियां नाथ दी बार' (पांच टुकड़ों में विभाजित) 'हीरासिंह जरनैल दी 'बार', 'मियां डिडो दी बार' बाजसिंह जरनैल दी बार' आदि ऐसी ही बारें हैं।

इन बारों का विश्लेषण करने पर निश्चित रूप से इनकी विशेषताएं आंकी जा सकतीं हैं जो निम्नलिखित हो सकती हैं—

1. प्रबन्धात्मक गीत / गेय गाथा।
2. वीर रस पर आधारित बीच-बीच में रौद्र एवम् करुण रस की भी पृष्ठभूमि का होना।
3. शृंगार रस का सर्वथा अभाव—जो अन्य भाषायी गाथाओं से बिल्कुल अलग बात है—अकसर वीर गाथाओं में नायक की प्रेरणा का स्रोत कोई नायिका होती रही है पर डोगरी वीर गाथाओं में प्रेरणा स्रोत कोई नायिका न होकर देश की आन, स्वाभिमान, वचनबद्धता और पारिवारिक द्वन्द्व आदि रहे हैं।
4. नायक कोई श्रेष्ठ वीर पुरुष (अकसर राजपूत सेनापति) राजा, सेनापति, वजीर आदि होता है। उदाहरणार्थ मियां डिडो की बार में मियां डिडो, मियां

नाथ की बार में मियां नाथ, बाजसिंह, हीरासिंह, जोरावर सिंह आदि डुगर धरती के प्रसिद्ध जां-बाज जरनैल रहे हैं।

5. प्रायः किसी विशेष कार्य की सफलता हेतु लड़ते-लड़ते नायक की मृत्यु—मियां नाथ, मियां डिडो, हीरासिंह जरनैल, बाजसिंह आदि युद्धभूमि में लड़ते हुए वीरगति प्राप्त करते हैं।

6. नायक के व्यक्तित्व का परिचय केवल एक घटना के माध्यम से; वह भी आंशिक। अकसर उसकी पौरुषता पर ही 'बार' का सारा कथानक केन्द्रित होता है।

7. 'बार' का कथानक निश्चित ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित होता है। बाद में जन-सम्पर्क और कालांतर से परिवर्तन आते रहना किन्तु फिर भी ऐतिहासिक आधार को छोड़ा नहीं जाता।

8. लोकगायक केवल 'दरेस'। अक्सर डोगरा राजाओं सामन्तों के दरबार में चारण कवियों की तरह उनके शौर्य का बखान करने हेतु 'दरेस' (दरवेश से उत्पत्ति) लोक कवि हुआ करते थे जो अक्सर मुस्लिम होते। वे केवल बारों को रचते और गाते थे। बाद में धीरे-धीरे 'दरेस' राजाओं के साथ ही लोप हो गए जो रह गए वे अपनी जीविका भिक्षा आदि मांग कर कमाने लगे। कारकें और दूसरे लोकगीत गाने वाले योगी और गारड़ी बाद में 'बारें' भी गाने लगे। लेकिन "बारों' के नाम पर लोकगीत (भाग दो) में संकलित गाथाएं ही उन्हें उपलब्ध हो सकीं—यही कारण है कि आज तक डोगरा वीर गाथाएं 'बारें' उपलब्ध नहीं हो सकीं।

9. अक्सर 'बार' की स्थाई से पहले अल्लाह का नाम लिया जाता है और फिर 'बार' आरम्भ होती है।

10. चकारे तथा गतार आदि वाद्य यन्त्रों का प्रयोग होना।

11. सरल लोकछन्द 'बार' में उपलब्ध है जो छप्पय का एक भेद कहा जा सकता है।

12. बीच-बीच में स्थाई के साथ-साथ नायक पक्ष की पौरूषता को इंगित करने के लिए कुछ विशेष पंक्तियों को दुहराना और तिहराना।

13. ये गाथाएं मौखिक रूप से एक दूसरे लोकगायक से होकर हम तक पहुंची हैं अतः रचनाकार का कोई पता नहीं मिलता इसी कारण शायद लोकगायकों के लोप होते-होते अनेक गाथाएं भी लोप हो गईं हैं।

14. इन गाथाओं से रचनाकार के व्यक्तित्व का कोई पता नहीं चलता।

अक्सर साहित्यिक रचनाओं में रचनाकार की छाप अथवा व्यक्तित्व का कोई न कोई परिचय अवश्य रहता है पर ये गाथाएं उस से स्वतन्त्र हैं।

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐतिहासिक पृष्टभूमि पर आधारित ऐसी वीरगाथा जिस के केन्द्र में पौरूष का प्रतीक नायक किसी शाश्वत उद्देश्य हेतु अपने को उत्सर्ग या बलिदान करदे 'बार' कहलाती है। फिर इस परिभाषा पर संकलित 'बारें' ठीक नहीं बैठतीं। उन्हें किस कोने में रखा जाए! केवल वे ही बारें नहीं अपितु महाराजा प्रतापसिंह तथा महाराजा हरिसिंह की मृत्यु पर लिखी गई गाथाएं, 'मंगतु ब्राह्मण' आदि की कथा भी 'बार' नहीं कहलाई जा सकती—इस ओर (साढ़ा साहित्य पृ० 199 में) मैं पहले भी संकेत दे चुका हूँ। पहली गेय कथाएं करुण रस की नींव पर रची गई हैं और सारे प्रबन्ध गीत में शोक का राज्य रहता है। महाराजा प्रतापसिंह और महाराजा हरिसिंह की मृत्यु और उसके बाद का शोक संतप्त साम्राज्य ही इन प्रबन्ध गीतों का आधार है। किन्तु 'मंगतु ब्राह्मण' के प्रबन्ध गीत में मंगतु ब्राह्मण के बहादुरी के कारनामों का बखान तो मिलता है पर उस में लोक-श्रद्धा का अभाव है। किसी शाश्वत् उद्देश्य को लेकर मंगतु ब्राह्मण जो कि केन्द्रीय व्यक्ति हैं—नहीं चल कर मात्र अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति हेतु लड़ता है और अंत में मरता है—पर वह एक ऐसा शैतान है कि मर कर भी अपने दुश्मनों पर हावी रहता है। उनके स्वप्न दुश्चिताओं में बदल जाते हैं। इन्हें 'बार' न कह कर क्रमशः करुण-गाथाएं और मंगतु ब्राह्मण की गेयकथा कहा जा सकता है। ये गाथायें रिकार्डिड अवस्था में मेरे पास सुरक्षित हैं।

'बार' में प्रो० निर्मोही ने अपने लेख में (पृ० 41 साढ़ा साहित्य 1978) ऐतिहासिकता के स्थान पर जन-श्रुति को आधार माना है। वे यह भूल जाते हैं कि वे अंग्रेजी की 'BALLAD' की ही परिभाषा को ध्यान में रखे हैं। वास्तव में 'बार' का विश्लेषण वे ठीक से नहीं कर पाए हैं। यहां मैं 'BALLAD' की परिभाषा दे रहा हूँ—"ऐसी गाथा का नाम जो मिथकों पर अथवा साधारण कथानक पर आधारित होती है और जिस के रचनाकार का कोई पता नहीं होता। इस में लगातार सोच का अभाव रहता है,"† डोगरी लोकगाथा 'बार' का अपना स्थानीय महत्व है। 'बैलेड' से उस की तुलना मात्र

---

† Ballad : the name given to a type of verse of unknown authorship dealing with episode or simple motif rather than sustained scheme. (Encyclopaedia Britanica — Volume 2, Page 993).

प्रबन्धात्मकता के आधार पर ही की जा सकती है। इन्हीं पंक्तियों में वे आगे लिखते हैं—

"बार दे सूत्र बी इतिहास च तुप्पे जाई सकदे न पर जन-श्रुति कन्ने सम्बन्धत होई जाने दे कारण इतिहासक सच्चाई कोला किश परे हटी गेदे न।‡

इसी कारण तो यह 'बार' कहलाती है नहीं तो ऐतिहासिक प्रबन्ध गीत कहलाए। वे भूल जाते हैं कि यह ऐतिहासिक प्रबन्ध गीत नहीं अपितु लोक वीरगाथा है। ऐतिहासिक धरातल पर आधारित इन लोकगाथाओं में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। सदियों तक ये गाथाएं एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक मौखिक रूप से यात्रा करती आई हैं—निश्चय ही अपनी सुविधानुसार लोक-गायकों ने समय-समय पर कथा और शिल्प में परिवर्तन किया होगा—अन्यथा स्वतः ही कालान्तर से शाब्दिक परिवर्तन आते रहे होंगे।

उपलब्ध रिकार्डिड 'बार' का एक अंश यहां मैं प्रस्तुत करना चाहूंगा—उदाहरण के तौर पर। यह बार 'मियां नाथ-बाहु के राजा कृपाल देव के बज़ीर की पौरूषता का बखान करती है। राजा कृपाल देव अपने बज़ीर मियां नाथ की तलवार देख कर ललचा आया था अतः उस से तलवार मांग बैठा बस यहीं से एक युद्ध छिड़ गया।

मियां नाथ का सामना करने के लिए राजा कृपाल देव अवध सिंह नामक ब्राह्मण को भेजता है जिस के साथ मियां नाथ युद्ध नहीं करना चाहता—क्योंकि वह ब्रह्म हत्या का भागी नहीं बनना चाहता। पर अवध सिंह उसे उकसाता है और कायर तक कह डालता है तो मियां नाथ उससे युद्ध करने को मान लेता है पर तीन 'बार' उसे अपने पर करने देता है कि ब्रह्म हत्या का कलंक न लगे और चौथे हाथ में उसका काम तमाम कर डालता है। 'बार' की पंक्तियां देखें—

आपूं राजे हुक्म कराया, आपूं राजे हुक्म कराया
अवधसिंह गी हुक्म कराया, अवधसिंहैं गी हुक्म कराया
भुवलेटयां जमदी मायी ओ धन्न भुवलेटयां जमदी मायी
ओ शेर दा घोड़ा हा, ओ शेर दा घोड़ा हा
शेर दा घोड़ा मदाने जाई, खीरबंल करना नाथै तांई

‡ साढ़ा साहित्य—78, पृ० 41।

नाथ तेरे पैरें पौंदा, ओ नाथ तेरे पैरें पौंदा
धन्न भुवलेटयां जमदी मायी पकड़ी तलवार बर्छी उठाई
तुलकी नाथे दे तन लाई, नाथ ढाला लैंदा जाई
धन्न भुवलेटयां जमदी माई, धन्न भुवलेटयां जमदी माई
पगड़ी तलवार, पगड़ी तलवार, नाथे दे तन लाई
दुई होर नाथ दे तन लाई, त्री होर नाथे तन लाई
उठन कड़ाके, उठन कड़ाके ढाला जाई
उठन कड़ाके, उठन कड़ाके ढाला जाई
चौथी वारी—
चौथी वारी नाथे दी आई ।।२।।
पगड़ी तलवार बर्छी उठाई ।।२।।
तुलकीं अवधसिहें गी लाई ।।२।।
ओ बैठी लक्के—ओ बैठी लक्के बिच गे जाई
दो चार पंज खडेरे—दो चार पंज खडेरे जाई
तेज बहादुर नाथ जिने बली मार गिराया जी ऽऽऽ
तेग बहागुर नाथ जिने बली मार गिराया जी ऽऽऽ

इधर कारकों पर काफी कार्य हुआ है किन्तु बारों पर रत्ती भर भी कार्य नहीं हुआ। इसके कई कारण हो सकते हैं—

1. शासकीय पद्धति के समापन के साथ दरेसों का पलायन।
2. दरेस परम्परागत आजीविका का सहारा न पाकर बाद में अपनी कला से विमुख हो गए और अनेक दूसरे क्षेत्रों में आजीविका को ढूंढते गुम हो गए।
3. जो दरेस रह गए उन्होंने भिक्षा मांगना शुरू कर दी, अतः जन-साधारण में गुम हो गए उन्हें ढूंढा नहीं जा सका।
4. 'कारकें' तो किसी न किसी अनुष्ठान के साथ जुड़ी हैं अतः समय-समय पर धार्मिक स्थानों, पितृ स्थानों आदि के मेलों और इकट्ठ में योगियों और गारड़ियों को कारकें गाते सुना जा सकता है पर 'बारें' तो जन-साधारण के साथ न जुड़ कर विशेष व्यक्तियों और उनके कारनामों से जुड़ी हैं। यहां कारकें भी विशेष व्यक्तियों के साथ जुड़ी हुई कही जा सकती हैं पर वे उस व्यक्ति के वंश के साथ साधारणीकरण कर और उनके साथ तादात्म्य बैठा कर एकात्म हो गई हैं वहां 'बारें' नितान्त एक व्यक्ति

की पौरूषता तक ही सीमित रह कर साधारण व्यक्तियों तक नहीं आ सकीं। उन तक उन की पौरुषता का आश्चर्यजनक भाव ही पहुंच सका हैं जिस के प्रति आस्था होते हुए भी उनके मन में एक अजनबीयत का अहसास रहता है। कहीं पर वह अहसास उनके नायक की पौरूषता से अलग पड़ जाता है।

5. पहले जमींदार, सामन्त वर्ग के लोग आदि अपने पुरखों का बखान सुनने कभी-कभी दरेसों तथा दूसरे लोक-गायकों को विशेष अनुष्ठानों पर अपने यहां बुलवा कर उन्हें प्रोत्साहन देते थे, पर अब अति-आधुनिकता के नाम पर रिकार्ड प्लेयर, टेपरिकार्डर, आदि का प्रयोग कर, चलचित्र कलाकारों और रेडियो के कलाकारों को बुलवा कर अपने मन को संतुष्ट कर लेते हैं। नगरीय वातावरण छोड़ कर ग्राम-प्रांत में भी इन लोक गायकों को स्मरण नहीं किया जाता जिस का कारण है कि निरुत्साहित होकर लगभग सब लोग इस क्षेत्र से पलायन कर चुके हैं और जो नहीं भाग सके लोक गायन उनकी नियति बन गया है। यहां एक उदाहरण मैं देना चाहूंगा। सरोर निवासी पीरां दित्ता जो कि लगभग 90 वर्ष के हैं घरों में लोक गीतगाकर गुज़र करते हैं—उनके लड़कों में से किसी ने भी इस कार्य को नहीं अपनाया है। वे छोटी-मोटी नौकरी में अपने को लगा चुके हैं। पीरांदित्ता 'दरेस' भी शायद काफी पहले इस पेशे को छोड़-छाड़ देते पर अब इस उम्र में और कर भी क्या सकते हैं? उन्हीं के अनुसार यह उन की नियति बन चुका है। ऐसी स्थितियों में भला 'बारें' कहां जीवित रह पातीं। फिर भी इस क्षेत्र में जो प्रयास होना चाहिए वह नहीं हुआ। जो साधारण स्थितियों में उपलब्ध हो सका उसी को संकलित कर लेना ही काफी नहीं है; हमें उससे आगे प्रयास करना होगा।

संकलन—इस ओर मैं पहले भी संकेत कर चुका हूं (साढ़ा साहित्य, '78) कि अक्सर संकलन दो तरह के होते हैं—एक व्यावसायिक तौर पर और एक शोध कार्य हेतु। पहली प्रकार का संकलन लोक साहित्य के लिए घातक भी हो सकता है—लोक गाथाओं के नाम पर—उन की धुन पर नए गीतों को बुन लेना और उन को छपवा कर लोक गाथाओं के नाम पर प्रसारित कर देना व्यावसायिक प्रकाशकों का कार्य रहा है इस लिए प्रामाणिक संकलन के लिए यह जरूरी हो जाता है कि उन की रिकार्डिंग की जाए और कैसेट्स को प्रिज़र्व किया जाए। यह भी प्रश्न हो सकता है कि संकलन क्यों? यदि संकलन न किया जाए

तो कालान्तर में टूटता हुम्रा गाथाग्रों का भण्डार कब खत्म हो जाएगा कोई नहीं जानता। इन दिनों नई सभ्यता ने जितना नुकसान लोक साहित्य का किया है शायद ही ग्रौर किसी ने किया हो। चलचित्र, फिल्मी गीत, तीनों ग्रादि के ग्राकर्षन ने लोक गाथाग्रों को जितना तोड़ मरोड़ दिया है शायद ही कभी ऐसा हुग्रा हो। फिर एक ग्रौर प्रश्न उत्पन्न होता है कि कहीं पहाड़ों, घाटियों ग्रादि में गूंजते लोक गीतों के स्वर किताबों में संकलित होकर दफन न हो जाएं या कैसेट्स में बंद न हो जाएं। उसके लिए यह जरूरी है लोकवार्ता का एक सामान्य मंच स्थापित हो जहां न केवल इस पर शोध कार्य किया जाए ग्रपितु लोक गायकों को भी प्रकाश में लाकर प्रोत्साहित किया जाए। तब कहीं जाकर लोक साहित्य के सही, सुचारु ग्रौर वैज्ञानिक ग्रध्ययन की सुविधाएं जुटाई जा सकेंगी तथा लोक साहित्य को विकृत होने से बचाया जा सकेगा।

□

डुग्गर की योगपरक लोक गाथाएं

प्रो० शिव 'निर्मोही'

भारत में योग की परम्परा बहुत पुरानी है। पातंजल के योग दर्शन से पूर्व सांख्य दर्शन में योग की विभिन्न मुद्राओं तथा प्रवृत्तियों का अंकन है। गीता में सांख्य योग को ज्ञान योग तथा संन्यास योग के नाम से अभिहित किया गया है। हेय, हेय हेतु, हान तथा हानोपाय सांख्य के मुख्य सिद्धान्त हैं। पांतजल के योग दर्शन में योग शब्द विस्तृत अर्थ में व्यवहृत हुआ है और इस दर्शन के अनुसार चित्तवृत्ति का ही योग है। पातंजल के मतानुसार योगशास्त्र में मुख्यतः चार पाद हैं—समाधि पाद, साधन पाद, विभूतिपाद तथा कैवल्य पाद। पहले पाद में योग शब्द का अर्थ, द्वितीय में तप का महत्व, तृतीय में ध्यान तथा चतुर्थ में कैवल्य का मर्म बताया गया है। बौद्ध साधकों के पास भी काया योग का साहित्य था जो बाद में विभिन्न रूपों में विकसित हुआ। सिद्धों और नाथों के युग में योग सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों का सृजन हुआ और योग मार्ग को केवल प्रगति हेतु अनिवार्य समझा गया। नाथ सम्प्रदाय में तप योग तथा कुण्डलिनी योग को भी हठ योग के अन्तर्गत माना गया। इन्द्रिय निग्रह द्वारा पिण्ड में ब्रह्मांड ढूंढ़ने का प्रयत्न भी इस पंथ का मुख्य लक्ष्य माना गया। गोरक्ष नाथ ने योगी के दृष्टिकोण से पिण्ड के अतिरिक्त सर्व को व्यर्थ कहा। उन्होंने योगी को वेदों से भी ऊपर उठाया और योग मार्ग को सर्वश्रेष्ठ मार्ग घोषित करते हुए कावेषय गीता के इस मत का प्रबल समर्थन किया कि :—

योगमार्गात् परोमार्गो नास्ति नास्ति ।

अर्थात् योग मार्ग से परे मार्ग नहीं है।

नाथ सम्प्रदाय द्वारा प्रवर्तित योग दर्शन ने समाज के साथ साथ साहित्य को भी प्रभावित किया। भारतीय भाषाओं में विशेष रूप से पूर्वी तथा उत्तरीय अंचलों के साहित्य में योग दर्शन साहित्य का विषय उसी प्रकार बना जिस प्रकार

पालि और प्राकृत भाषाओं में जैन तथा बौद्ध दर्शन बना था।

भक्ति काव्य की ज्ञान मार्गीय तथा प्रेम मार्गीय धाराएं योग दर्शन के प्रभाव से तो बच न सकीं परिणामतः योग दर्शन लोक साहित्य में भी आ घुसा। बंगाली, गुजराती, मराठी, ब्रज, अवधी तथा बुंदेलखंडी के लोक साहित्य की भाँति डोगरी लोक साहित्य में भी योगपरक लोक गाथाओं की एक धारा बही जो बाहरी प्रभाव से पूर्णरूपेण मुक्त थी।

डोगरी की योगपरक लोक गाथाओं में से अधिकांश डुग्गर क्षेत्र से सम्बन्धित नहीं हैं। ये गाथाएं कई प्रदेशों का चक्कर लगा कर डुग्गर प्रदेश में पहुंचीं किन्तु आंचलिकता के रंग में इतनीं रंगी गईं कि वे बाहरी न लग कर अपनी लगती हैं। बंगाल की प्रसिद्ध लोक गाथा 'गोपी चन्देर गान' समस्त उत्तरी भारत की यात्रा करती हुई डुग्गर प्रदेश में प्रविष्ट हुई। बंगाली लोक गाथा 'गोपी चन्देर गान' तथा डोगरी लोक गाथा 'राजा गोपी चन्द' योगपरक लोक गाथाएं हैं। इन दोनों गाथाओं का वैज्ञानिक दृष्टि कोण से अभी तक तुलनात्मक अध्ययन नहीं हुआ है किन्तु इतना तो निर्विवाद है कि डोगरी लोक गाथा का नायक राजा गोपीचन्द्र बंगाली लोक गाथा का नायक राजा गोपी चन्देर ही है। डॉ० काली नाग के अनुसार 12 वीं शताब्दी तक गोरक्ष से गोपीचन्द के योग दीक्षा प्राप्त करने की कथा गुजरात में प्रसिद्ध हो चुकी थी। भावे का मत है कि 12 वीं ही सदी में महाराष्ट्र में नाथ पंथ फैल चुका था और गोपीचन्द की गाथा भी गाई जाती थी। सुधाकर द्विवेदी ने बंगाली लोक गाथा और राजस्थानी लोक गाथा का तुलनात्मक अध्ययन किया था और वे इस परिणाम पर पहुंचे थे कि बंगाली लोक गाथा और राजस्थानी लोक गाथा में कथावस्तु की दृष्टि से थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य है। उन्होंने मालवा प्रान्त में इस गाथा का अधिक प्रचार होने के कारण गोपीचन्द को मालवा का ही राजा माना।

कई विद्वान गोपीचन्द को उज्जैन, रंगपुर, धारानगरी तथा कंचन पुर का राजा मानते हैं। चन्द्र नाथ योगी गोपीचन्द को मध्य प्रदेशीय मांडूगढ़ का राजा मानते हैं।

बागची महोदय ने गोपीचन्द की लोक गाथा पर अनुसन्धान कार्य किया है और वे इस परिणाम पर पहुंचे कि गोपीचन्द गौड़नंग के तिलकचन्द्र का पुत्र था। बंगाली परम्परा के अनुसार गोपीचन्द्र विमलचन्द्र का पुत्र और मालवे के राजा भर्तृहरि का भांजा था। इन की माता का नाम मैनावती और बहन का नाम चन्द्रावती था। पिता के मर जाने के बाद गोपीचन्द भोग में पड़ गया। माता

के समझाने पर वह योगी बन गया। उसने नाथ पंथ में दीक्षा ले ली।

डोगरी लोक गाथाओं में भी गोपीचन्द को बंगाल का राजा कहा गया है। उसे भोग विलास एवं ऐश्वर्य में लिप्त दिखाया गया है यथा :—

चन्दन दी चौकी सुन्ने दा गड़वा बैठ गोपीचन्द न्हौन लाई।

(चन्दन की चौकी पर बैठ कर सोने के लोटे से गोपीचन्द नहाने लगा)

उसके पास सैन्य बल है, हाथी घोड़े हैं, राज्य है, राज सत्ता है :—

नौ सौ माई जी घोड़ा चढ़दा पंज सौ चढ़दा हाथी

(नौ सौ माता मेरे पास घोड़े और पांच सौ हाथी हैं)

बंगाली लोक गाथा में गोपीचन्द राज्य-सत्ता त्याग कर मां के अनुरोध पर गोरक्ष नाथ से दीक्षा लेता है, डोगरी लोक गाथा में भी इसी परम्परा क निर्वहण है :—

अग्गें पुत्तर पीछें माता, योगी बनान लेई।

काले बागें गोरख योगी, उनें गी गुरू बनाई।

(आगे बेटा पीछे माता, योगी बनने के लिए काले बाग में गोरख योगी के पास पहुंचे और उन्हें अपना गुरु बना लिया)।

बंगाली लोक गाथा में गोपीचन्द की मां का नाम मैनावन्ती हैं जबकि डोगरी लोक गाथा में केवल मैंना ही लिया गया है :—

मुड़ेआं पुतरा गोपीचन्दा आखै मैनां माई।

(बेटा गोपी चन्द रुक जाओ तुम्हारी मैना मां कह रही है)

बंगाली लोक गाथा में गोपीचन्द की बहन का नाम चन्द्रावती है जिस का विवाह बालकराम ज्ञोगीसर के अनुसार बंगाल के चन्द्र नगर के राजा से हुआ। डोगरी लोक गाथा में गोपीचन्द की बहन का वर्णन तो है किन्तु उस का नाम नहीं लिया गया है। बंगाल की परम्परा के अनुसार चद्रावती भी योगिन बन गई थी किन्तु डोगरी गाथा में कथावस्तु का रूप कुछ बदला बदला लगता है। बहन को भाई के योगी बनने का मान नहीं हैं वह नौकरानी से जब भाई के आगमन का समाचार सुनती हैं तो उस से पूछती है कि उसके साथ सेना कितनी है। गोली (दासी) से यह सुन कर कि गीपीचन्द योगी बन गया है उसे गहरा आघात लगता है और वह आत्महत्या कर लेती है :—

द्रौड़दी; द्रौड़दी आई इक गोली आएआं रानी तेरा भाई।

किन्ना लश्कर किन्नियां फौजां किन्ने संग शपाई।

न कोइ लश्कर न कोइ फौजां नेइ कोइ संग शपाई।

हाथ च फूड़ी, अलखो अलख जगाई ।
वहनूं नैं दिक्खेया वीर अपना मरै कटारा खाई ।
गोपीचंदै छिड़की अमरत बूटी लैती भैन बचाई ।

डोगरी लोक गाथा आगे मौन है । सम्भव है गोपीचन्द के चमत्कार से प्रभावित होकर वह भी योगिन बन गई हो और इस कथा प्रसंग को डोगरी गाथाकार भूल गये हों ।

डोगरी की दूसरी योगपरक लोक गाथा जिस का कथानक डुग्गर की धरती से बाहिर का है; वह है—राजा भर्तृहरि की लोक गाथा । डोगरी लोक गाथा में राजा भर्तृहरि को राजा भरथरी कहा गया है । डोगरी लोक गाथा का राजा भरथरी बंगाली लोक गाथा से काफी भिन्न है किन्तु हिमाचल की लोक गाथा के बहुत निकट है । बंगाली परम्परा के अनुसार भरथरी मालवा नरेश थे जब कि योगी चन्दर नाथ के अनुसार उज्जयिनी के राजा चन्द्र गुप्त की पुत्री का एक ब्राह्मण से विवाह हुआ और उससे भर्तृ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ।

किन्तु डोगरी लोक गाथा में भर्तृहरि का ऐतिहासिक रूप अति धूमिल और योगी रूप अति उज्ज्वल है । भर्तृहरि अपनी रानी पिंगला के कहने पर आखेट खेलने जंगल में गये । वहां उन्होंने हिरणियों से घिरे हुए क्रीड़ारत हीरा हिरण को तीर से मार दिया । हिरणियों के विलाप को सुन कर राजा भर्तृहरि को बहुत मानसिक कष्ट पहुंचा । वे योगी बन गये । हिमाचल लोक साहित्य में इस घटना का वर्णन डोगरी लोक गाथा से बहुत मिलता जुलता है ।

महलां ते चलेआ ओ राजा,
राजा भरतरी जांदा दरजिए बाल,
झोली चोला स्याया राजें,
करी लेआ जोगिया भेस तिनी,
मजले मजले चलदा बो भरतरी,
जांदा माता रे पास,
राजा भरतरी अलख जगांदा,
"भिच्छा देयां जोगिए जो ।"

कुल्लुई लोक गाथा भरथरी में कथा बहुत आगे बढ़ी है । वह डोगरी लोक गाथा से आगे चल कर बिल्कुल भिन्न रूप धारण कर लेती है । कुल्लुई लोक गाथा में प्रेम-कथात्मक गाथाओं की भांति विरह-अनुभूति अति तीव्र रूप से

व्यंजित हुई है । भरथरी की प्रेयसी बिरमा का जन्म पद्मावत की नायिका पद्मिनी की भांति सिंहल गढ़ के राजा के घर ही हुआ है । कुल्लुई लोक-गाथा कारों ने इस कथा में गुरु गोरख नाथ का महत्व प्रदर्शित करने के लिए योग सम्बधी प्रतीकों का नि:संकोच प्रयोग किया है ।

राजा भरथरी सम्बन्धी डोगरी लोक गाथा के कुछ अंश इस प्रकार हैं—

चैतर महीने रित दुआसी दी, म्हलें बैठी रानी पिंगला—
हरण आया इक बागें बल्लै बल्लै ।
कोदे जंगलें दा तू हरण ।
कैसी आया मेरे बाग बल्लै बल्लै ।
तां हीरा हरण मुखा बोलेया ।
त्रै सौ सठ मेरियां रानियां ।
तेरे कोला चंचल मेरी नार बल्लै बल्लै
समझी चलो राजा पर्तृ ।

चौरंगी नाथ :—चौरंगी नाथ ही योगी परम्परा में पूरण भक्त के नाम से विख्यात हैं । इन्हें डोगरी लोक गाथाओं में कई नामों से सम्बोधित किया गया है यथा सहज नाथ, संदोख नाथ, तथा दौलत नाथ । चौरंगी नाथ ने भी गुरु गोरक्ष नाथ से योग लिया था अतः उन की गाथा को भी योगपरक गाथाओं में परिगणित किया जा सकता है । डोगरी में उपलब्ध पूरण भक्त की गाथा पर पंजाबी प्रभाव है । चौरंगी नाथ ने भी ब्राह्मण गंगदत्त को योग सिखा कर गंग नाथ बनाया था । खिलवाड़ी ग्राम के निकट देववाला जोहड़ के नाम से चौरंगी की धूनी अब भी है ।

डा० मोहन सिंह ने चौरंगी नाथ को प्राण संकली पुस्तक के आधार पर सालवाहन सुत कहा है । अतः सियाल कोट के पूर्ण भक्त में और चौरंगी नाथ में साम्य स्थापित करने का काफी आधार है ।

डोगरी लोक गाथा पूरण भक्त पंजाबी किस्सा पूर्ण सिंह का ही रूपान्तर है । अतः विशेष चर्चा अपेक्षित नहीं ।

राजा होड़ी की लोक गाथा भी योगपरक लोक गाथा है । इस का नायक रसालू भी एक ऐतिहासिक पात्र माना जाता है, कुछ इतिहासकारों ने उसका समय ११ वीं शताब्दी माना है । टेम्पल ने इस का समय ८ वीं सदी और ब्रिग्स ने भी उसे मुहम्मद बिन कासिम का समकालीन माना है । योग पथ की परम्परा के अनुसार वह गोरक्ष का शिष्य था और योगी बनने से पूर्व चौहान

राजपूत था। राजा होड़ी की गाथा किसी समय बहुत ही लोकप्रिय रही होगी। रसालू के योगी बनने के संवाद को नाथ योगियों ने ही प्रचारित किया होगा। डोगरी लोक गाथायों में यही एक ऐसी गाथा है जिस में पद्मावत की भांति सुश्रा को पथ प्रदर्शक के रूप में दर्शाया गया है :—

मारी मंजलां रसाल टुरी पेश्रा, सुन्दर तोता टुरेश्रा नाल।
ताड़ी लग्गी गोरखनाथ दी टिल्ले सीस बे नवा।

× × ×

श्रग्गों सुन्दर तोता बोलदा, करदा राजे नै जवाब।
साढ़े वस दी नि बात ऐ, लुटचे राजा चल शबाब।

रसालू की गाथा में योग पथ सम्बन्धी श्रनेक उक्तियां हैं।

ढोल बादशाह की लोक गाथा निःसंदेह योगपरक लोक गाथाश्रों के श्रन्तर्गत परिगणित नहीं की जा सकती क्योंकि इस में निवृत्ति के स्थान पर प्रवृत्ति का श्रंश श्रधिक है। फिर भी गाथा कारों ने लोक गाथा में स्थिति पैदा करके योग तथा योगियों का परिचय पाठकों को देने का सफल प्रयत्न किया है। यथा—

श्रौं बरती पूर्ण यती गी, लूना छोड़ेश्रा मरवाई।
श्रौं बरती गोपी चन्द गी, महलैं रौंहन्दी सौ-सट्ठ-नार।
श्रौं बरती राजे भरतरी, महलें रोन्दी पिंगला नार।
श्रौं बरती श्रां लक्खन यती गी टिल्ले छोड़ेश्रा हा चाढ़।
श्रौं बरती राजे जट्ट गी टिल्लै जाई कन्न पड़वा।

'लछमन दा जोग' विशुद्ध रूप से योगपरक लोक गाथा है। इस गाथा का सृजन सोद्देश्य योगमार्ग की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए किया गया है। वैष्णव धर्म के मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र स्वयं लक्ष्मण को योग मार्ग में दीक्षा लेने हेतु गोरक्षनाथ के पास भेजते हैं। ऐतिहासिक विसंगतियों के कारण इस गाथा में इतिहास तत्व पूर्णतः लुप्त है किन्तु योग-पक्ष उभरा है।

रामचन्द्र लक्ष्मण को "टिल्ले" जा कर योग दीक्षा लेने का श्रादेश देते हैं—

टिल्लै जा तू नाथ है, गुरतेरा ई सोइ।

लक्ष्मण ने भी गुरु गोरक्षनाथ की शरण में जाकर विनीत भाव से कहा—

गुरुश्रा जोग दे मन चामदा, लछमन श्ररज गुजारी।

राजा हौंस की लोक गाथा में योगपथ पर यथा सम्भव प्रकाश डाला

गया है । यथा—

अग्गों ब्राह्मनी बोलियैं, सुन स्वामी मेरी बात ।
जोगी बनी जा मेरेआ स्वामिया, मत पेई जा राज गी ख्याल ।
जोगी बनी रूप चन्द्र टुरी पेया मंडी जाईयैं लख जगा ।

राजा मंडलीक की लोक गाथा शतप्रतिशत योगपरक लोक गाथा है । इस पर विस्तृत चर्चा फिर कभी करेंगे ।

बावा सिद्ध गोरिया तथा बिरपा नाथ विशुद्ध योगपरक लोक गाथाएं हैं। इन गाथाओं में से गोरक्षनाथ के महत्व के साथ-साथ योग सम्बन्धी ज्ञान भी दिया गया है । बावा सिद्ध गौरिया गौर बन्द (सम्भवतः गज़नी) का क्रूर शासक था किन्तु गोरक्षनाथ के सम्पर्क से महान योगी बन गया । वीरू एक साधारण ब्राह्मण गडरिया था जिसे राक्षस को बलि देने के लिए खरीदा गया था, गोरक्ष नाथ के आशीर्वाद से मृत्यु से बच गया और बाद में नाथ पंथ में दीक्षित हो कर योगी बन गया ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि डोगरी में योगपरक लोक गाथाओं की संख्या कम नहीं है ।

योगदर्शन—डुग्गर की योगपरक लोक गाथाओं में योग-योगी और योग दर्शन सम्बन्धी सामग्री बिखरी पड़ी है । निःसन्देह डोगरी गाथाकार योग दर्शन जैसे गूढ़ विषय में पारंगत तो नहीं थे किन्तु फिर भी उन्होंने ज्ञानमार्गीय शाखा के संत कवियों की भांति अशिक्षित होते हुए भी अपने अनुभव के आधार पर योग सम्बन्धी बहुत से तथ्यों की चर्चा की है ।

योगी—डोगरी लोक गाथाओं में साधक को ही योगी माना गया है। डुग्गर की योगपरक गाथाओं के सभी नायक साधक हैं अतः वे योगी हैं । डुग्गर की इन गाथाओं के साधक केवल नाथपंथ में ही दीक्षित हैं अतः नाथपंथ द्वारा निर्देशित योगी के गुण ही इन गाथाओं के साधकों में उपलब्ध हैं । हिन्दी के प्रेम कथात्मक काव्य पद्मावत में योगी वेश का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

तजा राज राजा भा जोगी अरु किंगरी कर गएउ विओगी ।
तन विसम्भर मन बाउर लटा, उरुझा प्रेम परी सिर जटा ।
चन्दन वदन अउचन्दन देहा भसम चढ़ाई कीन्ह तन खेहा ।
मेखल सींगी चकर धंधारी जो गोटा रुदराक्ष अधारी ।
कंथा पहिरि डंड कर गहा, सिद्ध होइ कहं गोरख कहा ।
मुंदरा श्रवन कंठ जप माला कर उदपान कांध बघछाला ।

पांबरि पायं लीन्ह सिर छाता खप्पर लीन भेस कर राता।
चला भुगुति मांगइ कहं साजि किया तप जोग।
सिद्ध होऊं पदुमावती हृदय जेहिक विग्रोग।

जायसी ने एक योगी के वेश का जो सशक्त वर्णन किया है ऐसा वर्णन डोगरी लोक गाथाग्रों में तो उपलब्ध नहीं किन्तु जायसी के योगी से मिलता जुलता रूप डोगरी गाथाग्रों में भी देखा जा सकता है —

सिरे दा खोलेग्रा पंचरंग चीरा गोरख टोपी लाई।
कन्ने दा तोग्रारियां मोती दी मुरकियां मुन्दरें दी जोड़ी पाई।
गले दा तुग्रारेग्रा केसर जामा ग्रंग विभूत लगाई।
पैरें खोलेग्रा पाटों जोड़ा, खड़ामें दी जोड़ी पाई।
लाई वभूति चलेया राजा महलें ग्रलख जगाई। (राजा गोपी चन्द)

गोरक्षनाथ एक ग्रादर्श योगी थे। वे ग्रपने, मेखला, शृंगी, सेली, गुदरी, खप्पर, कर्ण मुद्रा, कोपीन, कमण्डल, भस्म, व्याघ्राम्बर, झोला ग्रादि से संयुक्त रहते थे। डोगरी लोक गाथाग्रों में योगी के वेश वर्णन में एक साथ इतनी विशेषताएं तो कहीं नहीं मिलतीं किन्तु इन का वर्णन स्थान-स्थान पर हुग्रा ग्रवश्य है।

जायसी के योगी वर्णन में ग्रौर डोगरी लोक गाथा के योगी वर्णन में योगी के लिए कानों में मुद्रा पहनने का समान रूप से विशेष उल्लेख है।

नाथ योगियों को कनफटा योगी ग्रौर नाथ पंथ को कनफटा पंथ भी कहते हैं। ब्रिग्स ने ग्रपनी पुस्तक—'गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगीज़' में कानों में कुंडल पहनने की परम्परा को ग्रति प्राचीन सिद्ध किया है ग्रौर सी० वी० नारायण ग्रय्यर ने कुण्डल मैत्री उपनिषद में उल्लिखित बताये हैं ग्रौर सुधाकर द्विवेदी कुण्डल की प्राचीनता एलोरा कला से भी प्राचीन सिद्ध करते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी इन्हें शिव से सम्बन्धित मानते हैं। कुछ भी हो, डोगरी लोकगाथाग्रों में योगी को योग-दीक्षा लेने से पूर्व कान फटवा कर कुण्डल पहनना ही पड़ते हैं :-

चली ग्राखने ग्रां गोरख नाथै ग्रस लैंगे कन्न पड़वाई।
कन्न पड़वाइयै मुंदरा पागे ते रलगे जमातै जाई।

नाथ पंथ में कान फड़वाने के पश्चात् शरीर में भभूत लगाने के बाद ही योगी बना जा सकता है :—

कन्ने शुरी कन्न छेदे नाथ जी, कन्ने दर्शन पाई।
कन्नें बलौरी मुंदरा बावे दै सफेद भवूती लाई।

इसी प्रकार डोगरी लोक गाथाओं में योगियों के पास शृंगी होना अनिवार्य समझा गया है साधक आवश्यकता पड़ने पर शृंगी बजाते वर्णित है :—

तूम्बे फड़ी ले जोगिए टिल्ला गरड़ाई ।
चेले आखन नाथ जी के प्रलय आई ।

इसी प्रकार कमण्डल, व्याघ्राम्बर, खप्पर तथा गुदड़ी का वर्णन डोगरी लोक गाथाओं में योगी वेश के अन्तर्गत हुआ है ।

योग पथ :- योगी वेश धारण करने मात्र से ही योगी नहीं बना सकता । योगी के लिए आवश्यक है कि वह योग पथ के मार्ग का अनुगमन करे । योग मार्ग सरल मार्ग नहीं है यह अति कठिन तथा दुर्लभ मार्ग है इस मार्ग पर चलने वाले योगी को कई प्रकार की यातनाएं तथा कष्ट सहन करना पड़ते हैं । सांसारिक लगाव, मोह माया, आडम्बर, कृत्रिमता तथा ऐन्द्रिय सुखों को त्यागना पड़ता है । योगी तो सुख दुःख से दूर रहता है :—

गतेन शोकेन भयेन वीप्सा,
प्राप्तेन हर्ष न करोति योगी

शोक, भय, वीप्सा, प्राप्ति और हर्ष से परे योगी है । वह तो प्रत्येक प्रकार के आडम्बरों से दूर है :—

नव्रतो न च तीर्थं च वचारादि कर्मच
नैव मौनं नवा सत्यं क्षेत्र पीठस्य सेवनं
न पूजनं च होमश्च न स्नानं दान मेव च
धर्माधर्मं न कर्तव्यं न बंधो लौकिक क्रिया
न काम नैव कोपंच नापि शून्यं समाचरेत्
न मायां नैव मोहच न शोकं कलहं तथा

योगी—'व्रत, तीर्थ, वचन, कर्म पूजन, मौन, सत्य, क्षेत्रपीठ सेवन, होम, स्नान, दान, धर्माधर्म, कर्तव्य, लौकिक क्रिया से परे-काम, माया आदि से दूर रहता है । उसके लिए तो शत्रु मित्र के समान और कंचन मिट्टी के ढेले के समान है :—

शमःशत्रौच मित्रेच समो लोठटेच कांचने,

वह तो 'सब अवस्था से मुक्त, सब स्वादों से दूर, स्वभाव से ही योगी मुक्त रहता है, इस में संदेह नहीं :—

सर्वास्था विनिर्मुक्तः सर्वस्वाद विवर्जितः
स्वभावतः तिष्ठते योगी विमुक्तो नात्र संशय ।

डोगरी लोक कथाओं के साधक राजा गोपी चन्द, राजा भरथरी, राजा रसालू, विरपानाथ, भैरों नाथ इत्यादि सभी सच्चे योगी के रूप में वर्णित हैं। गोपी चन्द, भरथरी, रसालू तथा भैरों नाथ इत्यादि योगी तो त्याग का ज्वलंत प्रमाण हैं। राज्य सुख त्याग कर योगी बने हैं।

साम्बा नरेश रत्नपाल गोरख नाथ के व्यक्तित्व से प्रभावित हो कर जब योगी बनने की इच्छा व्यक्त करता है तो गोरक्षनाथ उसे योग मार्ग की कठिनाइयों से सचेत करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहते हैं।

योग मार्ग दा औखा पैंडा ए कम्म सौखा नाई।
इक डंग खानी पुंज्जां सौना रौंहना नित बन बारो।
सम्भल सम्भल के दुनियां फिरनी दाग लाना नाई।
योगी बनेया गजरा कच दा ठेह लागी भज जाई।
धागा टुटा फिर जुड़ जन्दा टुटा कच जुड़दा नाई।

फिर योग दीक्षा लेने के पश्चात् योगी को विश्व भ्रमण का उपदेश दिया जाता है।

'जाओ नाथ जी दुनियां भरमो'

अथर्ववेद में भी योगी की भांति व्रात्य का वर्णन आता है कि व्रात्य घूमता रहता है और संसार के भले की बात कहता फिरता है। डोगरी लोक गाथाओं का योगी पाखंड तथा आडम्बरों, से भी दूर रहता है। डोगरी लोक गाथाओं में धार्मिक आडम्बर, रूढ़ि रिवाज तथा अंध विश्वासों पर भी कटु प्रहार किया गया है।

मूर्तियां जाई पूज्जै राजा ब्राह्मण पूज्जै नाई,
घर आये दे नाग नि पूज्जै बरमियां, पूज्जै जाई।

इसी प्रकार :—

चोटी कटी श्री गोरखनाथें पीठी थापी लाई।

नाथ सम्प्रदाय में इन्द्रिय निग्रह पर विशेष बल दिया गया है। इन्द्रियों के लिए सब से बड़ा आकर्षण है— नारी। योगी को नारी आकर्षण से दूर रहने के लिए आदेश दिया जाता है। गोपी चन्द, भरथरी, रसालू इत्यादि साधक रंगमहलों की अद्वितीय सुन्दरियों के आकर्षण से वियुक्त हो कर ही योगी बनने के बाद भिक्षा पात्र उठा कर घर-घर घूमते हैं। योग मार्ग में योगी नारी को माता के समान समझता है। उसे मातृ तुल्य पूजता है। गोपी चन्द, भरथरी इत्यादि नायक योगी बनने के बाद अपने रंग महलों की रानियों को

माता नाम से सम्बोधित करते हैं।

लाई वभूति चलेश्रा राजा महलें श्रलख जगाई।
कृष्णा वन्ती नैं बोली पंछाती थाल भरी मोती लाई।
लैंती भिक्षा झोली पाई, सुखी रौह तूं माई।

कृष्णा बंती ने माई शब्द का दृढ़ शब्दों में विरोध किया। गोपी चन्द को याद दिलाया कि वह तो उस की पत्नी है। योगी पत्नी को भी माता के समान समझता है—

जब थे राजा, तब थीं रानियां, हुन श्रस योगी तुम माई।

क्यों कि गोरख नाथ ने भी तो कहा है—

कामनी बहतां जोग न होई, भग सुष परलै केता।

(गोरख वानी)

गोरख पंथ में एक श्रोर तो नारी को सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित किया गया है तो दूसरी श्रोर उसे योग मार्ग की सब से बड़ी बाधा मानकर निन्दा भी की है। गोरक्ष नाथ को ऐसा कौल मार्गीय यौनवाद के विरुद्ध टक्कर लेने के लिए करना पड़ा था क्यों कि उन्होंने समाज में एक नया ही नारा दिया था—

सर्व धर्मान् पारित्यज्य योनिपूजारतो भवेत (प्राण तोषिणी)। ऐसे वातावरण में श्रावेश में ही श्राकर गोरख नाथ ने कहा था—

जिन रुपे रुपे कुरूपे गुरुदेम, वाघनी भोले भोले।
जिन जननी संसार दिखाया ताको ले सुत खोले।

नारी के प्रति उदासीनता का यह स्वर सूफी काव्य में भी मुखर हो उठा—

राजा भरथरी सुनि न श्रजानी जोहि के घर सोरह सै
रानी कुचन्ह लिए तखा सोहराई भाजोगी कोऊ संग न लाई।

इसी प्रभाव के बहाव में श्राकर डोगरी गाथाकारों ने भी योग मार्ग में नारी को मुख्य बाधा मान कर उस की निन्दा की है—

नार निं करनी पुरोहता लाडली।
जद कद करदी काल विनास।

नारी के प्रति श्रनासक्ति, का यह स्वर डोगरी लोक गाथाश्रों में भी उभरा है।

योग साधना—वेदान्ती के अनुसार जीव और शिव का मिलन योग है। शैव मत में शिव और कुण्डलिनी का मिलन ही सायुज्य मुक्ति है। नाथ सम्प्रदाय में पिण्ड में ब्रह्मांड ढूंढ़ना योग है। सांख्य जौरन्याय दुःखों से निवृति प्राप्त करना ही मनुष्य का ध्येय मानते हैं किन्तु वेदांती ब्रह्म से एकता चाहता है और नाथपंथ के अनुसार भी योगी की आत्मा प्रकृति में लय होकर ब्रह्मा में लीन हो जाती है। नाथ योगियों ने योग साधना के लिए हठ योग पर अधिक जोर दिया है। नाथ योगियों से पहले भी मार्कण्डेय का हठ योग था किन्तु उस का स्वरूप क्या था यह ज्ञात नहीं है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार हठ योग ह और ठ का संयोग है। शरीर का आधा भाग सूर्य और आधा भाग चन्द्र है। हठ योग द्वारा दोनों का एकीकरण सम्भव है। नाथ योगियों ने हठ योग को इसी रूप में ग्रहण किया है।

हजारी प्रसाद ने लिखा है कि गोरखनाथ षटचक्र या षडांग और अठटांग योग को अनिवार्य मानते थे। अनाहत चक्र 12 दलों के स्थान पर नाथ सम्प्रदाय में 8 दल का माना गया है। डोगरी गाथाकारों ने नाथ सम्प्रदाय द्वारा प्रवतित योग को ही गृहणीय माना है और गाथाओं में इसी योग को सांकेतिक भाषा में प्रयुक्त किया है।

षटचक्र—षटचक्र भेदन को नाथ सम्प्रदाय में अनिवार्य माना गया है। कई विद्वान तो षटचक्र को या षडांग योग को गोरखनाथ द्वारा ही प्रवर्तित मानते हैं। डोगरी गाथाओं में षटचक्र भेदन की चर्चा सांकेतिक भाषा में की गई है—

छे जन्दरे शक्ति कन्ने खुल्ले, सतमां खुलदा नाईं।

छः जन्दरे (ताले) ही छः चक्र—मूलाधार, स्वाथिष्ठान, मणिपुर अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञा चक्र हैं। इन चक्रों को योगी हठ-योग के द्वारा खोल तो सकता है किन्तु इन से ऊपर सहस्रधा चक्र को सुगमता से नहीं खोला जा सकता। षटचक्र भेदने की चर्चा गोरखबानी में इस प्रकार की गई है—

ए षटचक्र का जाणैं भेव, सो आपै करता आपै देव।

मन पवन साधै ते जोगी, जुरा पलटै काया होइ निरोगी।

किंवदन्ती है कि शंकर ने षटचक्र योग का निरोध किया था। उन्होंने तान्त्रिकता का भी विरोध किया था किन्तु नाथ सम्प्रदाय में एक योगी के लिए षटचक्र भेदन को आवश्यक माना गया, क्योंकि नाथ दर्शन वेदान्त से एक स्वतन्त्र पंथ है।

अष्ट चक्र—षटचक्र भेदन की स्थिति के बाद सुरति शब्द की अनुभूति होती है। यह शब्द अनाहद योग से सम्बन्धित है जो षटचक्र भेदन के बाद सहस्रधा में होता है। सहस्रधा संगठित ज्योतियों का एक ज्योति पुंज है इस पर अधिकार करने के बाद योगी सुख दुःख से मुक्त हो जाता है। बस षटचक्र भेदन के बाद रुकावटें हट जाती हैं और नये मार्ग खुल जाते हैं—

सत कोट टप्पे राजे नैं ते अठमीं टप्पी ऐ खाई।

यह आठमीं खाई ही अष्ट चक्र की ओर संकेत करती है। गोरखवाणी में भी अष्ट चक्र का बार-बार वर्णन हुआ है—

यती अष्ट मुद्रा का जाणैं भेव, सो आपै करता आपै देव।

नाथ पंथ में अष्टांग योग का महत्व स्वीकार किया गया है—

एती अष्टांग जोग पारछ्या भगति का लछिन,
सिधां पाई साधिकाँ पाई जे जन उतरे पार।

इन आठ चक्रों के नाम गोरक्षनाथ ने इस प्रकार बताये हैं—

आधार, द्रिष्ट, मणिपुर, अनहद, विसुध, अगनि, गिनांन।

सुछिम आठ चक्र हैं। इन आठ चक्रों का भेद जानने से साधक योगी बन जाता है—

ए अष्ट कमल का जाणौं भेव।
आपै करता आपै देव।

कैवल्य प्राप्ति के लिए नाथ पंथ में चौरासी सिद्धों और नौ नाथों के आशीर्वाद को भी परमावश्यक माना गया है। कबीर ने भी इन की चर्चा अपनी वाणियों में की है—

सिध चउरासहि माइया महि खेला ते नौ नाथ सूरज अरु चन्दा।

डुग्गर की योगपरक गाथाओं में भी सिद्धों और नाथों के प्रति आदर-भाव प्रदर्शित किया गया है—

नौ नाथ तेरी जानी कनें, कनें दर्शन पाई,
चरासी सिद्ध तेरी जानी कनें, अंग भबूत रमाई।

गोरखनाथ ने भी स्वयं कहा है कि—

जोग जुगति सार तौ भौ तिरिये पार, कथत गोरखनाथ विचार।

डोगरी गाथाकारों ने सात लोकों और नौ द्वारों की योग के संदर्भ में चर्चा की है—

सतदेव नौ खंड कम्बी गे, थर - थर कम्बी मंडी।

नौवें द्वार को कई साधकों ने ब्रह्मरन्ध्र माना है।

कुण्डलिनी—योग वासिष्ठ के अनुसार कुण्डलिनी शरीर के मर्म स्थान में, चक्र के आकार वाली, सैकड़ों नाड़ियों का आश्रय, आत्र वेष्टनिका नाम की नाड़ी है। उस का आकार वीणा के अग्र भाग की गोलाई, जल भंवर या ओंकारार्द्ध तथा कुण्डल चक्र के समान है। वह ऐसी सोई हुई है जैसे जाड़े से अति कुण्डली मार कर सर्पिणी। डोगरी लोक गाथाकारों के अनुसार भी कुण्डलिनी शरीर के भीतर सर्पिणी की भांति कुंडल मार कर बैठी लगती है—

विच बरमी दे वासा तेरा, बेइयै कुंडल मारी।

कुंडलिनी ही चैतन्य अग्नि है। इसे ही आत्म ज्वाला या चैतन्य ज्योति कहते हैं। पांचों ज्ञानेन्द्रियों का बीज कुण्डलिनी शक्ति में स्थित है। यह शरीर में इस प्रकार है जैसे फूल में सुगंध देने वाली मंजरी। प्राणायाम के अभ्यास से योग पंथ के अनुसार, शारीरिक और मानसिक परिस्थिति को सह कर कुंडलिनी शक्ति अपने मूलाधार स्थान से ऊपर उठ कर सुषुम्णा नाड़ी के द्वारा ब्रह्मरंध्र पर्यंत आती है और दण्डाकारनिभ होकर सर्पिणी सी ऊर्ध्व गति को प्राप्त करती है और सब नाड़ियों की शक्ति को भी अपने साथ ऊपर ले जाती है और उस में शरीर को उड़ा ले जाने की ऐसी शक्ति हो जाती है जैसे हवा से भरी नीरंध्र मशक जल पर तैरती है। डोगरी लोक गाथाकारों को इस का ज्ञान था तभी उन्होंने गोरखनाथ को हवा में उड़ता वर्णित किया है। रेचक के अभ्यास रूपी युक्ति से प्राणों को मुख से 12 अंगुल बाहर बहुत समय तक स्थिर करने के अभ्यास से योगी दूसरे के शरीर में प्रवेश करता है। डोगरी गाथाओं में गोरखनाथ को कई रूपों में इस शक्ति का ज्ञान होने के कारण ही वर्णित किया है—

धारी रूप मच्छरै दा गुरु गोरख राजै कोल आई।

गोरखवाणी में भी योगी कुण्डलिनी का आह्वान इसी प्रकार करता है—

आओ देवी वैसो। द्वारिस अंगुल पैसो,
पेसत पेसत होइ सुव। तब जनम मरन का जाइ दुप।

डुग्गर की योगपरक लोक गाथाओं में नाथ पंथ के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते समय प्राण साधना, मन साधना तथा नाड़ी साधना का प्रतिपादन भी हुआ है।

अतः हम कह सकते हैं कि डुग्गर की योगपरक लोक गाथाएं नाथपंथ का प्रचार करने के उद्देश्य से सृजित की गईं और इन का जन मानस पर अमिट प्रभाव भी पड़ा। □

कश्मीरी लोक साहित्य में हास्य-व्यंग्य

—क्षेम लता बखलू

कश्मीरी लोक साहित्य में हास्य-व्यंग्य की रूपरेखा को परखने के लिये हमें इसके ऐतिहासिक प्रसंग और परिस्थितियों को ध्यान में रखना बहुत आवश्यक है। कश्मीर में वैसे तो हास्य-रस की परम्परा पहले से ही प्रचलित थी। संस्कृत के महाकवि क्षेमेन्द्र ने 11वीं शताब्दी में उस समय की परिस्थितियों को मधुर व्यंग्यपूर्ण काव्य में व्यक्त किया है। इस तरह समय के उत्तार-चढ़ाव के कारण कश्मीरी स्वयं अपने ही ऊपर हंसते हुए दूसरों को भी हंसाता रहा है।

भूंचाल, आग, सूखा जैसे प्राकृतिक प्रकोपों तक को उन्होंने यूं वर्णित किया है, जो व्यंग्य से भरपूर है और जिन को सुन कर कभी हंसते हुये रोना भी आता है। सम्भवतः ऐतिहासिक कठिनाइयों, अपनी खोटी तकदीर का, या प्राकृतिक नागहानियों का सामना करने के लिये ही हास्य-व्यंग्य का सहारा लिया गया हो। यही कारण है कि कश्मीरी लोक साहित्य में व्यंग्यात्मक हास्यरस से युक्त कितने ही गाने, कहानियां, अफसाने तथा चुटकुले प्रचलित हैं, जिन का प्रचार केवल बोल चाल की भाषा द्वारा ही हुआ है।

परन्तु पिछले चालीस पैंतालीस वर्षों के अंतर्गत, लोक गायकों के प्रयत्नों से 'लडीशाह' तथा 'शहाराशोव' जैसे व्यंग्यपूर्ण हास्यरस में ओतप्रोत गीत लिखने सम्भव हुए। इस प्रकार कश्मीरी लिपि भी पनपने लगी और कई अफसाने लोगों के सामने आये। इन अफसानों में 'सैलाब नामा' 'आतिशनामा', और 'बेबूज नामा' प्रसिद्ध हैं। जिन में क्रमशः भाड़, आग और राजाओं के अत्याचार, अफसरों के सताने पर बहुत कुछ कहा गया है। इसी प्रकार मुल्लाओं, मौलवियों, किसानों, पुरोहितों पर भी व्यंग्य भरे गीत बनाये गये हैं, जिन को सुन कर व्यक्ति लोटपोट हो जाता है। किसान, पीरों, पुरोहितों को हास्यरस का आधार बना कर उनका खूब मखौल उड़ाया गया है। इस तरह

वातावरण के बदलने के संग इन कहानियों के रूप भी बदलते रहते हैं। दुःख इस बात है कि लिपि के अभाव के कारण यह भरपूर कोश हम बहुत कुछ खो चुके हैं। जो कुछ उपलब्ध है, वह मुंह बोले किस्सों, गीतों, वाक्यों, मुहावरों पर आधारित है।

'लड़ी शाह' एक गीत रूपी लड़ी है जिस में व्यंग्य रूपी मनके पिरोये जाते हैं। इस में नाटकीय अंदाज़ में, हास्यरस से भरपूर परिस्थितियों का वर्णन किया जाता है। इस में भाषा सरल होती है और लय तथा ताल का मिश्रण होता है। यह कश्मीर में बहुत लोक-प्रिय है। 'लड़ी शाह' में जीवन के किसी भी पहलू को लेकर गीत गाते हैं।

सन् पैंतालीस के उपरान्त—हवाई जहाज़ों की उड़ान का खूब वर्णन किया गया, रेड़ियो पर भी यह प्रोग्राम खूब चलते हैं। इन में हास्य व्यंग्य द्वारा, छोटे बड़े व्यक्तियों के कारनामे, उन की करतूतें, उन का चरित्र-चित्रण किया जाता है।

इसी प्रकार वाल्टर लारेंस साहब की कश्मीर यात्रा को 'लड़ी शाह' की लड़ी में पिरोया गया था। भूमि के नये बन्दोबस्त का चित्रण इस प्रकार किया गया है—

एक पटवारी अपनी पत्नी से कहता है,
"गोलमाल नहीं चलेगा अब,
लारेंस साहब ने बोला तब।"

रेडियो और दूरदर्शन के प्रोग्रामों ने कश्मीरी लोक साहित्य को खूब बढ़ावा दिया। सियासी परिवर्तन के साथ इस साहित्य में भी नयापन आता गया। जैसे भारत पाकिस्तान का युद्ध, परिवार नियोजन, परीक्षाओं में नकल की आदत और नयी-पुरानी विचार धाराओं की टक्कर। परीक्षा का वर्णन यूं किया गया है—

'नकल किया या चोरी,
बेशक कहो, सीना जोरी,
अध्यापकों का मैं प्यारा,
मम्मी का हूँ राजदुलारा,
डैडी की आंख का तारा,
सब को मैंने मारा, तुम सब ने हारा,
मैंने किया पास—मैट्रिक पास-पास-पास।

एक ग्रौर उदाहरण इस प्रकार है—

'रठ मैटन कांगिर, कुछ मैत्य दोर।'

यानि चाहे बैलबाटम पैन्ट पहनो, लम्बे-लम्बे बाल रखो, हिप्पी बनो, फि भी फिरन-कांगड़ी तेरा साथ न छोड़ेगी।

ग्राधुनिक काल के कई कवियों ने, कश्मीरी लोक साहित्य, जो कि हास्यर से भरपूर है को नये सिरे से सजाया है। उसे बड़ी कुशलता तथा दक्षता प्रकट किया है। कई कवि सम्मेलनों में इन्हें पढ़ा गया है ग्रौर यूं व लोकप्रिय बन गया। इस तरह यह लोक साहित्य लिख कर सदा के लि सुरक्षित हो गया।

महजूर (1885–1952) एक महान कवि थे। कश्मीर का ग्राधुनि दौर उन का बहुत ग्राभारी है। उन की एक छोटी कविता ग्राज कल सियासी वातावरण पर ग्रच्छी खासी टिप्पणी है। जैसे—

"स्वतंत्रता, एक ग्रासरा,
सब के संग, न जाने वाली।
प्रेम-क्रीड़ा में व्यस्त,
धनवानों या नेताग्रों के महलों में।"

यह टिप्पणी व्यंग्य से भरपूर है।

कश्मीरी में प्रथम गद्य 1821 में लिखा गया। उस समय बाइबिल का कश्मीरी ग्रनुवाद शारदा लिपि में लिख कर प्रचलित हुग्रा था। शेष जो कुछ भी गद्य में लिखा गया, वह सब 1948 के उपरान्त की ही देन है। कश्मीरी लेखों, कहानियों ग्रौर प्रसारित प्रोग्रामों के द्वारा हास्य-व्यंग्य को काफी प्रोत्साहन मिला ग्रौर वह काफी लोकप्रिय बना। 1965 के युद्ध के दिनों में रेडियो द्वारा प्रसारित प्रोग्राम—"चरखचूं" कश्मीरियों के मनोरंजन का मुख्य साधन बना, जिस में हास्यरस में भरे व्यंग्य को बड़े ही कलात्मक ढंग से चित्रित किया गया था।

इसी प्रकार ड्रामा के रूप में कश्मीरी लोक साहित्य के हास्य पक्ष को ग्रौर भी बढ़ावा मिला है। कविता ग्रौर कहानी के द्वारा जो कुछ बन न पाया वह नाटक के द्वारा कहना सुगम हो गया। कश्मीर का लोकप्रिय नाटक 'भांड पाथर' ग्रौर 'भांड जशन' ग्रब फिर से जी उठा है। इन नाटकों में लोगों के बोलचाल की भाषा होती है जो कि बहुत सहज तथा सरल होती है। इन

नाटकों को खेलने के लिये मंच की आवश्यकता नहीं होती है। सब से आकर्षक अंग इस का हास्य व्यंग्य होता है, जिसे साधारण लोग बहुत पसन्द करते हैं। दूरदर्शन के द्वारा भी इस को प्रोत्साहित किया गया।

यदि इन सब को पुस्तकों में या टेपरिकार्डर पर उतार दिया जाये तो निःसंदेह कश्मीरी हास्य रस तथा व्यंग्य पूर्ण लोक साहित्य एक अथाह समुद्र की भान्ति प्रकाशित होगा।



कश्मीर के लोक नृत्य

—मोती लाल क्यमू

भारत एक विशाल देश है जिसमें विभिन्न भाषायें बोलने वाले तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की रीती रिवाजों वाले लोग बसते हैं। इस देश में भिन्न प्रान्तों और राज्यों में लोक नृत्य भी भिन्न प्रकार के हैं। यह लोक नृत्य कई प्रकार के है। मुख्य प्रकार तीन हैं। एक—वह लोक नाच जो केवल स्त्रियों या पुरुषों द्वारा नाचा जाये। दो—जिस में स्त्री-पुरुष मिल कर नाचते हैं। तथा तीन—वह लोक नाच जो केवल पेशेवर लोक नृतकों द्वारा जनता के मनोरंजनार्थ नाचा जाए। साधारणतः इन तीनों प्रकार के लोक नृत्यों का सम्बन्ध ऋतु, उत्सव, विवाह आदि अवसरों के साथ होता है। प्रायः इन लोक नृत्यों के साथ लोक गीत भी गाये जाते हैं। तथा कई प्रकार के वाद्यों से उनकी संगत भी होती है।

कश्मीर के मुख्य लोक नाच चार हैं। रोफ़, बचनग़मा, दमाली और बीग्य नचुन। इन में रोफ़ और बचनग़मा काफ़ी लोकप्रिय हैं। 'रोफ़' मे आजकल केवल स्त्रियां ही भाग लेती हैं। कुछ वर्ष पहले स्त्री-पुरुष दोनों रोफ़ नाचा करते थ। किन्तु अब यह प्रचलन समाप्त सा हो गया है। 'रोफ़' नृत्य को ईद तथा विवाह आदि हर्षोल्लासपूर्ण अवसरों पर नाचा जाता है। 'रोफ़' कश्मीरी लोक-गीतों की एक शैली को भी कहते हैं जो रोफ़ नाच के साथ गाए जाते हैं तथा रोफ़ नाच के लयानुकूल होते हैं।

दो अर्ध मण्डलाकार पंक्तियों में मुख-प्रतिमुख खड़ी हो कर, एक दूसरे के कंधे पर हाथ धर कर स्त्रियां एक-डेढ पग आगे पीछे उठाती हुई 'रोफ़' गात गाती हैं। ऐसा क्रम तब तक चलता रहता है जब तक गीत समाप्त न हो जाए। रोफ़ के साथ किसी प्रकार का वाद्य नहीं बजाया जाता, केवल पैरों के आगे

पीछे करने तथा मुख झुकाने से गीत की लय को कायम रखा जाता है। कभी-कभी गीत की चरम सीमा पर लय द्रुत की जाती है और कदम तेज़ उठाये जाते हैं। इस अवस्था पर दो क़तारों में से दो स्त्रियां क़तारों के बीच में आकर एक-दूसरे के हाथ पकड़ कर, पैर मिला कर, अपने शरीर के बोझ को पीछे डाल कर चक्राकार घूमती हैं। जब लय अतिद्रुत गति को पहुंचती है और स्त्रियों के लिए द्रुत लय के कारण गीत गाना कठिन हो जाता है तो एक दम दोनों कतारें टूट जाती हैं और हंसी खुशी में 'रोफ़' समाप्त हो जाता है।

कश्मीर का सर्वप्रिय लोक-नाच बचनग़मा है। यह नाच पेशेवर लोक नर्तकों द्वारा साधारण जनता के मनोरंजनार्थ नाचा जाता है। १८वीं शताब्दी से पूर्व इस प्रकार के लोक नाच की प्रथा कश्मीर में नहीं थी। इस नाच से पूर्व कश्मीर में "हाफ़िज़ नग़मा" का रिवाज था। हाफ़िज़ाये कश्मीर के पारम्परिक शास्त्रीय संगीत सूफ़ियाना कलाम को गाने वाली नर्तकियां थीं। वे कश्मीरी और फ़ारसी के गीतों को गाकर नाचा करती थीं। पठानों के राज्यकाल में लोक-कलाकारों ने सुन्दर बालकों को हाफ़िज़ाओं की भांति लम्बे बाल रखवा कर नाचना सिखाया। इन दो प्रकार के नृत्यों में भेद केवल इतना था कि सूफ़ियाना कलाम शास्त्रीय रागों और तालों के आधार पर आबद्ध था और दूसरा लोक संगीत छकरी के आधार पर। "हाफ़िज़ नग़मा" महफ़िल की चीज़ थी इसलिए इस का आयोजन तथा प्रबन्ध साधारण जनता नहीं कर सकती थी। अतः लोक कलाकारों ने छकरी की धुनों पर 'बच्चे' को हाफ़िज़ाओं जैसे वेश तथा आभूषणों से सजाकर नाचना सिखाया। तभी से छकरी के साथ नाचने वाले नर्तक को "बच्चा" कहते हैं।

आज कल इस नाच को प्रस्तुत करने वाला नर्तक बच्चा न हो कर पूर्ण युवक भी होता है। किसी किसी पार्टी के पास दो या तीन नर्तक भी होते हैं जो सामूहिक नाच करते हैं। छकरी और बचनग़मा में जो लोक वाद्य प्रयोग में लाये जाते हैं, वे हैं—घड़ा, तुम्बखनारी, छोटी सारंगी, रबाब और हारमोनियम, घड़ों और तुम्बखनारी द्वारा ताल और लय नियंत्रित होती है। दोनों छकरी और बचनगमा को प्रस्तुत करने वाले आदमी छः या सात होते हैं।

बचनगमा एक प्रकार की सलामी से प्रारंभ होता है। सुर मिलाने के अनंतर वाद्यों पर एक धुन बजाई जाती है और बच्चा अपनी टांगों पर खड़ा होकर धुन की लय पर पीछे की ओर शीश नवाता है और दर्शकों से दाद पाता

है। पुनः अपनी पूर्व स्थिति पर आकर नर्तक पैरों का काम दिखाता है। यह कार्य लयाश्रित है। पैरों का काम प्रस्तुत करने के बाद "बच्चा" अपने हाथ सीधे फैला कर चक्कर लगाता है। यह चक्कर भी धुन तथा नगमे की लयानूकूल लगाये जाते हैं। अंत में बच्चा किसी गीत, ग़ज़ल या लोक गीत की किसी भी शैली का गीत गाकर उस के भावों को अपने अंग संचालन द्वारा अभिव्यक्त करता है। भावाभिनय, बच्चा की अभिव्यक्ति, सुन्दरता तथा संगीत की जानकारी पर निर्भर है। बच्चनग़मे के गीत प्रायः श्रृंगार तथा करुणरस के होते हैं। कश्मीरी लोक गीतों की प्रत्येक शैली को बच्चनग़मा में गाया जाता है। एक मुख्य विशेषता इस लोक नाच की यह है कि एक गीत प्रारंभ करने के अनंतर उस को समाप्त करने के पूर्व, उसी भावानूकूल कई गीतों को एक कड़ी की भांति भिन्न-भिन्न धुनों पर गाया जाता है। भावाभिव्यक्ति के साथ-साथ नर्तक बीच-बीच में नृत्य का सहारा लेता है। ऐसा घण्टों जारी रहता है।

'रोफ़' जैसा कि पहले कहा गया है नृत्य के अतिरिक्त लोक गीतों की एक शैली भी है। अतः 'बच्चा' भी अपने नृत्य के अन्तर्गत 'रोफ़' गाकर अकेला ही रोफ़ को पदसंचालन के साथ प्रस्तुत करता है, और अपने पेशवाज के दो छोरों को हाथ में लेकर आगे-पीछे हिलता जाता है।

'बच्चा' पैरों तक लम्बा एक चोग़ा सा पहनता है जिसे पेशवाज़ कहते हैं। , पेशवाज़ बाहों और कमर पर चुस्त रहता है और कमर से आगे पैरों तक खुला और ढीला रहता है। इसी पेशेवाज़ को हाफ़िज़ायें भी प्रयोग करती थीं, पेशवाज़ के अतिरिक्त 'बच्चा, दुपट्टे का भी प्रयोग करता है। कत्थक नर्तकों की भांति पैरों में बहुत से घुंघरू बांधे जाते है।

'बच्चनग़मा' और 'रोफ़' के अतिरिक्त दो और प्रकार के लोक नाच भी हैं जो आज भी घाटी भर में प्रचलित हैं, जिन का सम्बन्ध सम्पूर्णतया विवाह तथा उत्सवों के साथ है।

कश्मीरी-हिन्दू स्त्रियां विवाह तथा यज्ञोपवीत के अवसर पर अपने आंगन में मंडल बनाकर और बारी-बारी एक स्त्री मंडल से वृत्त के मध्य आकर नाचा करती हैं। इस अवसर पर कुछ चुने हुए गीत ही गाये जाते हैं। इन गीतों की धुन अन्य लोक गीतों से सर्वथा भिन्न है। इन गीतों में भाई-बन्धुओं की शुभ कामनायें की जाती हैं। इस नृत्य शैली को 'वीग्य' नचुन कहते हैं और इस के साथ गाये जाने वाले गीतों को 'वीग्य बॉथ' कहते हैं।

ग्रीष्म ऋतु में जब कश्मीर घाटी में कई स्थानों पर पीरों, ऋषियों तथा

सूफी संतों के मज़ारों पर मेले लगते हैं तो मुसलमानों के एक फिरके के लोग अपने नृत्य का प्रदर्शन करते है जिस को 'दमालय' कहते हैं। इस नृत्य को पेश करने वाले कबीले को दमाली फकीर कहा जाता है। यह कई पीढ़ियों से परम्परागत चला आ रहा नृत्य है। सभी नृतक पुरुष होते हैं। इस में स्त्रियां भाग नहीं लेती हैं क्योंकि इस का स्वरूप तांडविक है। इस में उछल कूद और धमाचौकड़ी का प्रदर्शन रहता है। हाथों में डांडियां लेकर रास भी खेला जाता है। ढोल और मंजीरे की लय ताल पर नृत्य होता है। इस नृत्य को पवित्र माना जाता है। जब नृत्य खत्म होता है तो नवजात शिशुओं को नृतकों की गोद में बिठाया जाता है तो नृतक अपना हाथ उनके माथे पर फेर लेते हैं। यह नृत्य हरियाणा के धमाल लोक नृत्य से भी मिलता है।

इन लोक नृत्यों के अतिरिक्त कश्मीर में लोक नाट्य शैली 'बांड पाथर' में भी लोक नृत्य का स्वरूप 'वचनगमा' के आधार पर मिलता है। इस नाट्य शैली में नृतकों की संख्या दो से अधिक होती है।



कश्मीरी लोक साहित्य में झूला-गीत

—मोती लाल साक़ी

कश्मीरी लोक साहित्य मधुर और सुरीले शब्दों का एक ऐसा विशाल सागर है जिसकी तह में अनमोल मोती बिखरे पड़े हैं। अपनी विविधता और विस्तार की दृष्टि से कश्मीरी लोक साहित्य बेपनाह तौर पर भरपूर, उपजाऊ और तहदार है कि हमारी जिन्दगी का हर रंग और हर रूप इस बेदाग दर्पण में पूरी आन-बान के साथ झलकता हुआ दिखाई देता है। कश्मीरी भाषा ने समय बदलने के साथ विभिन्न संस्कृतियों तथा भाषाओं से प्रभाव ग्रहण किए हैं। इन प्रभावों की खोज-पड़ताल करना तब तक असम्भव होगा जब तक कि हम लोक साहित्य के अक्षय भंडार को न देखें क्योंकि रचनात्मक साहित्य तो कभी एक धारा पर बहता रहा तो कभी दूसरी पर। कश्मीरी भाषा की प्रकृति से सही पहचान स्थापित करने की दिशा में सुसंस्कृत साहित्य हमारी कोई पहचान नहीं कर पायेगा अतः अंततः हमें कश्मीरी लोक साहित्य की शरण में ही जाना होगा।

कश्मीरी लोक साहित्य की समृद्धि का अनुमान लोक गीतों के उन भेदों से लगाया जा सकता है जो कश्मीर के देहातों में आज भी उसी प्रकार प्रचलित एवं प्रसिद्ध है जैसे सभ्यता के आगमन से पहले कभी हुआ करते थे। कश्मीरी लोक गीतों की कुछ एक किस्में इस प्रकार हैं—

(१) लो लो (२) रंगोली के गीत (३) नृत्य-गीत (४) लड़ी शाह (५) शादी-ब्याह के गीत (६) प्रेम-गीत (७) धान-पनीरी रोपने के गीत (८) चरवाहों के गीत (९) वान (ऐसे गीत जो किसी वृद्ध अथवा वृद्धा के निधन पर गाये जाते थे) (१०) मर्सिया तथा (११) पद (१२) पनीरी छाटने के गीत (१३) झूले के गीत (१४) बच्चों के गीत (१५) सहराई (१६) खेल-कूद के गीत (१७) हिन्दी

गीत (१८) विरह गीत (१९) फसल की कटाई के गीत (२०) हिजव् (निंदा) (२१) पद्य-पहेलियां (२२) व्यंग गीत इत्यादि।

लोक साहित्य की इस समृद्ध परम्परा को सामने रखकर सर वाल्टर लारंस ने एक जगह लिखा है कि यदि कश्मीर का इतिहास न भी लिखा गया होता तो भी सुदृढ़ लोक परम्परा एवं साहित्य के सहारे नये सिरे से लिखा जा सकता था। लड़ी शाह (Ballad) के सिवाय कश्मीर की लोक कविता की प्राय: विदाओं में गीत एवं संगीत अंश विद्यामान है परन्तु झूले के गीतों की शान ही कुछ निराली है।

सुन्दर हल्के एवं सुरीले शब्दों का चयण, संगीत की धीमी धीमी लय, आवाज़ो एवं आकांक्षाओं की सुगम-आंच एवं बाकी स्वर इन सभी ने मिलकर हमारे झूले गीतों को-एक एक रंग प्रदान किया है, इन सभी गीतों को सौन्दर्य एवं माधुर्य प्रदान किया है। इस दृष्टि से लोक-साहित्य की कोई भी विदा झूला गीतों की तुलना नहीं कर सकती।

कुल मिला कर लोक गीतों के अनोखे-पन का रहस्य इन की सादगी एवं प्रवाह में छिपा है। लोक रचना होने के कारण इन गीतों में किसी प्रकार का उलझाव इत्यादि नहीं होता, हर बात किसी रख रखाव एवं पेचीदगी के बिना, सफाई के साथ गीतों का रूप धारण कर लेती है। मगर कांट छांट न होने के कारण लोक गीतों का खुर्दरापन एवं एक-रंगी कभी कभी खटकने लगती है। मगर झूला गीतों में भावनाओं का तथ्य घर किये होता है। इन में वही मर्म एवं शीतलता पाई जाती है जो मां की ममता में है। इसी कारण हमारे 'झूला गीत' खाली गीत नहीं बल्कि आकांक्षाओं की फुल-झड़ियां हैं।

आधी रात की जब तुम्हारा जन्म हुआ भगवान् शिव ने स्वयं आकर तुम्हारी जन्म पत्री लिख दी। तुम्हारी जन्म पत्री से मुझे पता चला है कि तुम्हारी आयु दीर्घ होगी मेरे लाडले मुन्ने।

.. मैं तुझे घुंघरुओं से छलकते हुए झूले में झुलाऊंगी जीवन में नारी की सब से बड़ी आकांक्षा यही होती है कि उसकी गोद हरी हो जाए। ज्यों धरती माता की शोभा हरियाली से दोबाला होती है इसी प्रकार बच्चा नारी के जीवन में नई आशाओं एवं अकांक्षाओं को लेकर आता है। यही वह तड़प है जिसके कारण दुनियां बूढ़ी हो कर भी रंग बदल बदल कर जवान रहती है। और जीवन का कारवां सतत् चलता रहता है। इस तथ्य की रोशनी में झूला गीत रचना के सुन्दर सपनों से सजाने के गीत हैं।

संस्कृति के आरम्भ ही नहीं बल्कि आदि काल से ही बच्चा मानव के ध्यान का केन्द्र बिन्दु रहा है। इन्सान तो इन्सान पशु-पक्षियों में भी ममता की भावना विद्यमान है। हां, एक बात है कि वे अपनी ममता का प्रदर्शन नहीं कर सकते। बच्चे की याद में शेरनी हर उस वस्तु को तहस नहस कर देती है जो उसके रास्ते में आए और शंका होने पर नागिन मीलों तक शत्रु का पीछा करती है।

विश्व का कोई भी समुदाय ऐसा नहीं जो बच्चे के शिशु-जन्म पर भरपूर खुशी का प्रदर्शन नहीं करता। हर समुदाय एवं हर देश के लोगों ने सुन्दर कहानियों एवं गीतों की रचना की है। इन रचनाओं का अभिप्राय बच्चों के मनोरंजन के साथ साथ उनका चरित्र निर्माण भी रहा है। 'पंच तंत्र', 'कथा 'सरित सागर' "जातक कथाएं" "एसोफिस फैबलज़" "अंडर संज़ टेलज" साहित्य जगत की वह अनुपम रगनाएं हैं जिनकी रचना की पृष्ठ भूमि इन्हीं भावनाओं पर है।

आज का महकता चहकता बच्चा कल का जागरूक एवं उत्तर-दायी नागरिक है। गुरुदेव ठाकुर ने शायद इसी सत्य को भांप कर लिखा है—

"जब बच्चा पैदा होता है तो मेरा यह विश्वास और भी सुदृढ़ हो जाता है कि भगवान् अभी इन्सान से निराश नहीं।" महा कवि का यह अर्थ पूर्ण एवं गहन कथन इस प्रक्रिया की ओर संकेत है, जिससे भू-मंडल की रौनक कायम है। यह प्रक्रिया रचियता की अथाह शक्ति जिसे हिन्दुत्व ने शक्ति; इसराइल ने हव्वा एवं विज्ञान में ऊर्जा (energy) का नाम दिया है। नारी भी मूलत: शक्ति स्वरूप है। उसके गर्भ से जो बच्चा जन्म लेता है वह अपने आप में एक सम्पूर्ण रचना होता है। अपनी रचना को देखकर कौन पुल्कित नहीं होता क्योंकि रचियता की हर रचना उसकी सम्पूर्णता की ओर एक कदम होता है और रचियता के लिये हर्ष का कारण होती है।

शिशु-जन्म माता के वक्ष में उबाल पैदा करके दूध की धारा बहा देता है और इसके साथ ही वह मादकतापूर्ण गीतों की जोत जलाने में भी सफल होती है और वह गुनगुना उठती है—

लाडले, तुम्हारा पिता महाराजा इन्द्र है।
और माता नरगिस।
मैं तुम्हारे लिये मखमल का फर्श बिछा दूंगी।
तुम्हारा भूला भुलाने के लिये अप्सराओं को बुलाऊंगी।

मेरे मुन्ने, मेरे लाडले
तुम्हें झूले में सवार करके मैं स्वयं झुलाऊंगी।

यह मां के गुनगुनाने का पहला चरण नहीं होता अपितु यह क्रम बहुत पहले शुरु हुआ होता है। उसने अपने मन में नयी दुनिया को बसा रखा होता है। और आने वाले महमान के लिये तैयारियां की होती हैं।

मेरे मुन्ने मेरे लाडले।
मैं तुम्हें अपनी गोदी में बिठाऊंगी।
तुम्हारे लिये घी के दिये जलाऊंगी।
मैं तुम्हारी पालना दूध एवं चीनी से करूंगी।
मेरे मुन्ने मेरे लाडले।
मैं तुम्हें गोदी में बिठा कर सहलाऊंगी।

और जब नारी की मां बनने की आकांक्षा पूरी हो जाती है उसके सुन्दर सपने धीरे धीरे शब्दों के सांचे में ढल जाते हैं और माधुर्य बिखेरता हुआ गीतों का एक पहाड़ी झरना फूट पड़ता है—

मेरे मुन्ने तुमने इतनी देर काहे को कर दी ।
मैं तुम्हारे लिये एक ऐसा लिबास बना दूंगी।
जो तुम्हारे पैरों को भी ढांप ले—
मेरे मुन्ने तुमने इतनी देर काहे को करदी।
मेरी तो अब आंखें पथरा गई हैं।
मेरे मुन्ने तुमने इतनी देर काहे को करदी।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि बहुत सारी दुर्ग माताओं के बाद किसी नारी की गोद हरी हो जाती है। यों तो बच्चा पैदा होने के साथ ही उनका अंग अंग झूम उठता है। अपनी गोद हरी देख कर वह फूली नहीं समाती मगर कठिनाइयां जो उस पर बीतीं उसकी संवेदना गीत के रूप में फूट पड़ती हैं।

मैंने तो तुम्हें सोने की कीमत देकर खरीद लिया है।
मैं तेरे कानों को बालियों से सजा दूंगी।
निंदिया तू आ और मेरे लाडले को मीठी नींद सुला दे।
जब से तू पैदा हुआ है ।
उस दिन से मेरा यौवन लौट आया है।
जैसे सूखी डाली में फूल खिले हों।

मेरे हंसमुख मुन्ने तू सूर्य की तरह रहती दुनिया तक चमकना।
निंदिया तू आ और मेरे लाडले को मीठी नींद सुला दे।
तुम्हारे इन्द्र स्वभाव पिता ने तुम्हारे लिये पालना बनवाया।
नानी और नाना तुम्हारे लिये नया जोड़ा लेकर आये हैं।
मैं तुम्हारे सामने वेद और गीता का पाठ करूंगी।
निंदिया तू आ और मेरे लाडले को मीठी नींद सुला दे

बच्चा मां की गोद में मुस्कराता एवं किलकारियां मारता हो, मगर मां सपनों में अपने मुन्ने को चलते फिरते और स्कूल जाते देखती है। वह मन ही मन में एक नई दुनियां बनाने में मग्न हो जाती है। उसकी आकांक्षाएं गीत के रूप में फूट पड़ती हैं।

मैं तुम्हारे लिये एक अनमोल पालना खरीद लाई हूँ
उस पालने में सवार करके तुम्हें सहलाऊंगी और झूला झुलाऊंगी।
दुकान से मैं तुम्हारे लिये किताब ले आई हूँ।
मेरे मुन्ने मैं गोद में बिठा कर तुम्हें सहलाऊंगी।
अनंतनाग से मैं तुम्हारे लिये तख़्ती लाई हूँ।
उस पर लिखने के लिये तुम्हें सोने की लेखनी ले दूंगी।
तुम्हारे हाथ से लिखे हुए शब्द-शब्द नहीं बल्कि मोती के दाने हैं।
मेरे मुन्ने मैं गोद में बिठाकर तुम्हें सहलाऊंगी।

लड़के की तरह लड़की के जन्म पर भी हर्ष एवं उल्लास का प्रदर्शन किया जाता रहा है। अपने लोक साहित्य के विवेचन में मैं इसी निशकर्ष पर पहुंचा हूं कि पुराने समय में लड़की को इस प्रकार की 'आपदा' नहीं समझा जाता था जिस तरह आज कल के ज़माने में लड़की ग़रीब माता पिता के लिये मुसीबत का सामान बन कर आती है। लड़की के जन्म पर जिस हर्ष एवं उल्लास का प्रदर्शन किया जाता है वह किसी लड़के के जन्म के समय मनाए गए पर्व से किसी प्रकार कम नहीं होता।

मैं तुम्हारे लिये सोने की बालियां बनवा दूंगी।
लाडली मैं तुम्हारा नाम ही माल[1] रखूंगी।
लाडली जिस दिन से तुम ने जन्म लिया।
उस दिन से हमने खुशियों के अंबार लगा दिये।

---

1. कश्मीरी की एक प्रसिद्ध लोक कथा की नायिका।

तुम्हारी पालना के लिये दाई और नौकर रखे गए।
लाडली मैं तुम्हारा नाम हिमाल रखूंगी।
छोटी-अवस्था में ही हमने तुम्हें स्कूल भेज दिया।
क्योंकि शिक्षा प्राप्त करके ही संसार में सफलता मिलती है।
किताबों का बस्ता बगल में दबाए तू स्कूल चली गई।
लाडली मैं तुम्हारा ना हिमाल रखूंगी।

लोक साहित्य में लोरियों के अध्ययन से किसी हद तक कश्मीर के समाजी हालात एवं लोगों की मानसिक स्थिति समझने में सहायता मिलती है। इन्द्र जो वैदिक काल का एक शक्तिशाली एवं महान् देवता है, वह लोक साहित्य में गौरवशाली राजा नज़र आता है। कश्मीर के लोगों में जन्म-कुण्डलियां बनाने की प्रथा बहुत देर से चली आ रही है। लड़के एवं लड़की के जन्म पर एक जैसे हर्ष एवं उल्लास का प्रदर्शन किया जाता है। कश्मीरी पंडित बहुत देर से शैवमत को मानते हैं। शायद यही कारण है कि शिवरात्री कश्मीरी पंडितों का सब से बड़ा धार्मिक त्योहार है। कश्मीरी साहित्य का इतिहास यद्यपि शोध के अनुसार छः सौ वर्ष के लगभग है परन्तु लोक साहित्य का इतिहास इस से कहीं अधिक पुराना है क्योंकि लोक साहित्य की कोख से रचनात्मक साहित्य का जन्म होता है। लोक साहित्य के दायरे से बाहर हमारे यहां आम कवि झूला गीतों को एक बाकायदा विधा के रूप में आगे नहीं बढ़ा सके। झूला गीत कुल मिला कर नारी भावनाओं के प्रतीक होते हैं। कश्मीरी कविता के विकास में तो तीन नारियों—ललदेद, हब्बा खातून एवं अरणिमाल तो विशेषतः उल्लेखनीय हैं, मगर हमारी साहित्य निधि में एक भी लोरी या झूले का गीत इनके साथ जुड़ा नहीं। शायद यही कारण है कि इन तीनों में से किसी की गोद भी हरी नहीं हुई।

जहां तक पुरुष-कवियों का सम्बन्ध है, महमूद गामी से लेकर गुलशनमजीद तक यह मैदान सूना सूना नज़र आता है। रहमान राही और मेरे सिवाय किसी अन्य कश्मीरी कवि ने झूला गीता एक विध के तौर पर नहीं रचे। इसी लिये जब कभी हमारे यहां झूला गीतों का उल्लेख होता है तो हमारी नजरें लोक साहित्य की निधि पर ठहर जाती हैं।



डुग्गर प्रदेश के रीति रिवाजों में 'बेआ'

—डा० चम्पा शर्मा

किसी पाश्चात्य कवि ने सूर्य की तुलना स्वर्गलोक के झरोखे से की है, हम भी यदि किसी समाज के रीति-रिवाजों को उसका झरोखा मान लें तो उचित ही होगा क्योंकि रीतिरिवाजों द्वारा ही हम किसी समाज के अन्दर झांक सकते हैं।

डुग्गर-भूमि के सामाजिक जीवन में धर्म की प्रवृत्ति प्रमुख रही है, इस कथन की पुष्टि इस भूभाग में प्रचलित अनेक रीति-रिवाजों से होती है। ईश्वर-स्मरण, व्रत-पूजन, दया-धर्म आदि विषयक कर्म करना, डुग्गर निवासियों का अन्य सामान्य कर्मों के निष्पादन की भान्ति कर्म बना रहा है।

वैसे तो प्रत्येक धर्म में दान देने की महत्ता पर बल दिया है, प्रत्येक धर्म का आदेश है कि व्यक्ति द्वार घर आए भिखारी को कुछ बिना दिये लोटाये नहीं, यथा समय निर्धनों को भोजन-वस्त्र दे दे, एवं उनकी आवश्यकताओं को, जहां तक सम्भव हो सके—पूरा करने का प्रयास करता रहे। यह उल्लेखनीय है कि डुग्गर प्रदेश के वासी, चाहे किसी धर्म के भी हों—यथा-शक्ति धर्म-कर्म करते रहते हैं। प्रस्तुत लेख में डुग्गर समाज के हिन्दू-घरानों की नारियों द्वारा किये गये दान-कर्म सम्बन्धी कुछ-एक रीति-रिवाजों का उल्लेख किया गया है, इन रस्म-रिवाजो को करते रहने की पृष्ठभूमि में इहलोक एवं परलोक दोनों ही सुधारने की भावना प्रमुख रही प्रतीत होती है। आज भी डुग्गर प्रदेश के गांवों में इन रीति-रिवाजों का प्रचलन मिलता है, वहां अभी नगरों की भान्ति विदेशी सभ्यता का प्रभाव नहीं पड़ा।

'बेआ' देना ऐसी ही एक रीति है जिसके पीछे घर-परिवार में ऐक्य बनाये रखने एवं परलोक में पुण्य-प्राप्ति की कामना निहित प्रतीत होती है, 'बेआ' डोगरी शब्द 'व्याज' संस्कृत शब्द का निकटवर्ती है। 'व्याज' शब्द के

अनेक अर्थ है—जिन में से एक अर्थ 'बहाना' भी है। सम्भवतः 'बेश्रा' डोगरी शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होता रहा है। बेश्रा वह पदार्थ पुंज है जो निश्चित तिथि को किसी व्यक्ति विशेष को दान के रूप में दिया जाता है दान देने का कोई न कोई 'बहाना' लेकर ही मनुष्य अपनी आय में से कुछ दे सकता है। बिना किसी बहाने के किसी को कुछ दे पाना बड़ा कठिन हुआ करता है।

इसमें भी दो मत नहीं हो सकते कि मनुष्य दान देने का कार्य भी परिवार के सदस्यों से ही प्रारम्भ करता है। किसी महानुभवी ने कहा भी तो है—"अन्धा बांटे रेवड़ी, फिर-फिर अपनों को ही दें" ठीक ही तो है। घर-परिवार के सदस्यों को तो दो बेर भर-पेट खाने के भी लाले पड़े रहें और मनुष्य बाहिर के याचकों के लिए सदावर्त आयोजित करता रहे तो यह सब व्यर्थ है। यह तो वैसा ही हुआ जैसा कहा गया है—"पुत्र भूखे तो पुरोहित कैसे।" डुग्गर में 'बेश्रा' देने का सम्बन्ध केवल नारि जाति से है परन्तु 'बेश्रा' लेने वाले पात्र घर-बाहिर के पुरुष भी हो सकते हैं—

अच्छा रहेगा यदि 'बेश्रा' देने की चर्चा घर से ही प्रारम्भ किया जाये, घर में 'बेश्रा' देने वाली तो 'बहू' होती है और लेने वाले अधिकारी पात्र सास, ससुर, जेठानी, देवर, ननद आदि होते हैं। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि 'बेश्रा' में दिये जाने वाले सभी पदार्थ बहू के अपने मायके से लाने होते हैं, एक अन्य विशेष बात यह है कि 'बेश्रा' प्रायः संक्रान्ति के दिन ही दिया जाता है।

संक्रान्ति के दिन ससुर की गोद में पतासे डालती हुई बहू कहती है—"सौहरा मेरा आला-भोला, खन्दा पतासें दा झोला" (अर्थात् मेरा भोला सरल-सीधा ससुर बताशों का झोला भर के रजा करता है)।

इस प्रकार बहू वर्ष भर 'बेश्रा' देकर ससुर के चरण-स्पर्श करती रहती है और वर्षान्त मायके से ससुर महोदय के लिए तीनों वस्त्र, नकद पैसे तथा गुड़-बताशे आदि लाकर ससुर की गोद में डालती है। बूढ़ों को जहां एक ओर मीठा खाना भला लगता है वहां दूसरी ओर घी खाने की भी ललक रहती है, यही सोच कर सम्भवतः किसी पुत्रवधु ने चोरी छिप कर ससुर की खिचड़ी में 'घी' डालने का 'बेश्रा' प्रारम्भ किया होगा। पुत्रवधु चौके की दीवार की आड़ में छिप कर संक्रान्ति में ससुर की खिचड़ी में 'घी' डालती हुई कहती है—"कन्धा दे पिच्छों आई गई, सौहरे दी खिचड़ी च घ्यो पाई गेई।" (अर्थात् दीवार के पीछे से आकर ससुर की खिचड़ी में घी डाल गई)।

तत्पश्चात् वर्ष के बाद पुत्रवधु मायके से अपने ससुर के लिए वस्त्र एवं 'धी' लाकर देती है।

ससुर लोग पिता भले ही बन जाएं पर सासें माताएं नहीं बनतीं, यदि ऐसा हो सकता तो क्योंकर डुग्गर का लोक कवि कहता—"बरैंहकड़ गिल्ली बी बलै ते ते सस्स गरीबनी बी लड़ै।" (अर्थात् जिस प्रकार बरैंहकड़ नाम की जंगली झाड़ियां गीली भी जलती है उसी प्रकार सास निर्धन भी हो, तो भी झगड़ती है)।

प्रतीत होता है आपसी लड़ाई-झगड़े को रोकने के लिए ही डुग्गर की पुत्रवधुओं ने अपनी सासों को प्रत्येक मास में सूखा नारियल देने का बहाना निकाला हो। चाणक्य नीति में वर्णित साम-दान-दण्ड भेद नीतिओं में से 'दान' वाली नीति को अपनाकर सास के साथ अपने सम्बन्धों में सुधार लाने का प्रयास किया हो, साथ ही सास की गोदी में गरी डालते हुए प्रार्थना की होगी—"खा सस्सू ! ठूठी, मेरी गल्ल नेईं करेआं झूठी।" (अर्थात् सास जी गरी भी खाओ और मेरी प्रार्थना भी सुनो कि मेरी कोई झूठी बात बना कर किसी से न कहना)।

वर्ष के बाद पुत्रवधुयें अपने मायके से कांसे की कौली एवं सुन्दर पोशाक लाकर सास जी को भेंट करती हैं।

जेठानी का मान-सम्मान भी आवश्यक माना गया है। डुग्गर प्रदेश की युवतियां संक्रान्ति के दिन अपनी जेठानी के पांव का दायां अंगूठा धोकर पी लेती हैं और फ़िर वर्ष के बाद जेठानी के लिए बिछवे बनवा कर अपनी औकात के अनुसार वस्त्रों का जोड़ा तथा कुछ नकद पैसे देकर 'बेआ' पूर्ण करती है, इस अवसर पर वे कहती है—"पा जठानी छल्लियां, में सुरग द्वारे चलियां।"

ससुराल के घर के बाल-गोपालों का मन जीतने के लिए सम्भवतः किशमिश बिखेरने का 'बेआ' प्रारम्भ हुआ होगा। यह 'बेआ' देने वाली स्त्री घर की दहली पर खड़ी होकर कमरे में किशमिश बिखेरती है और उसे समेटने वाले बच्चे उसकी प्रशंसा करते हैं। उस समय बोले जाने वाले बोल हैं—"अन्दर कणेआं बाहर कणेआं, अपना जस्स में अपने कन्नें सुनेआ।"

पति के घर-परिवार में 'बेआ' लेने से भी प्रसन्न वातावरण बना रहता है पर उस पुत्रवधु को भी धन्य-धन्य कहा जाता है जो घर के आंगन-मुनेरों को भी लीप-पोत साफ सुथरा बनाए रखती है। ऐसा ही एक 'बेआ' डुग्गर प्रदेश में प्रचलित है जिस का सम्बन्ध घर के मुनेरों को गोबर से पोतने से है

संक्रान्ति को गोबर लगाती हुई 'बेग्रा' देने वाली कहती है—"में बनेरा कज्जेग्रा, मेरा सौह्.र-पीह्.र रज्जेग्रा।" (ग्रर्थात् मैं तो मुनेर को गोबर से ढांपती हूँ भगवान् मेरे ग्रागे-पीछे के परिवार ग्रर्थात् ससुराल ग्रौर मायके को मान-सम्मान से पुनीत करे, उनकी लाज रखे)।

इस 'बेग्रा' का समापन साल के बाद देवर को वस्त्र तथा पैसे देने से किया जाता है।

छत के परनाले से पानी बहाते हुए जो 'बेग्रा' प्रारम्भ किया जाता है उसके बोल हैं—

"में परनाला बगाया, सिरी कृष्ण न्हौन ग्राया।" ननद को महीने-महीने बादाम देने तथा वर्ष के ग्रन्त में कांसे की थाली भरकर बादाम देने एवं पौशाक देने से सम्बन्धित भी एक 'बेग्रा' डुग्गर प्रदेश में प्रचलित है।

इस प्रकार 'बेग्रा' एक ऐसा रिवाज रहा है जिस से डुग्गर प्रदेश में प्रचलित संयुक्त परिवार पद्धति दृढ़ बनी रही है। 'बेग्रा' देने वाली दूसरे कुल से ग्राई हुई—पूवश्रु कुल के सदस्यों का दान नीति से मन मोह लेती थी।

डोगरी नारियों को इस बात का भी ज्ञान है कि पञ्च-तत्वों से निर्मित यह भौतिक देह ग्रन्ततः छोड़नी ही पड़ती है, ग्रतः वे परलोक सुधारने के हेतु भी व्रत-एवं पुण्यकर्म-दान ग्रादि करती रहती हैं, बड़ी बूढ़ी स्त्रियां मन्दिर गये बिना कुछ खाती पीती नहीं है। घर-घर में एक छोटा सा ही सही—देवालय बनाया गया होता है जिस में विभिन्न देवों की प्रतिमाएं स्थापित की होती हैं, उन्हें नित्य पहले भोग लगाया जाता है तदुपरान्त घर के सदस्य भोजन करते हैं, कुछ एक 'बेए' ऐसे भी हैं जिन के ग्रहणकर्ता पण्डित पुरोहित नाविक एवं चौकीदार प्रहरी होते हैं, कुछ लोग बट्टियों (पुराने दो सेर) के 'बेए' भी देते हैं, संक्रान्ति को कोई एक पदार्थ दो सेर तोल कर किसी याचक ब्राह्मण को दे दिया जाता है। ये पदार्थ चावल, ग्राटा, फल-सब्ज़ी, मिठाई खांड़-गुड़, घी-तेल, नमक ग्रथवा ग्रन्य कुछ भी हो सकते हैं। जो-जो पदार्थ हम नित्य के जीवन में व्यवहार में लाते हैं वे सभी 'बेग्रा' में दिये जाते हैं। यह 'बेग्रा' जब तक सामर्थ्य हो दिया जा सकता है, क्योंकि देय पदार्थ ग्रनेक हैं।

परलोक-सुख हेतु दिये जाने वाले 'बेग्रा' में से एक 'बेग्रा' संक्रान्ति के दिन ब्राह्मण को दूध पिलाने सम्बन्धी भी है, वर्ष भर दूध पिलाने के बाद उसी ब्राह्मण को धोती, दूध का गिलास भर एवं कुछ नगद पैसे भी दिये जाते हैं ग्रौर निम्न बोल बोले जाते हैं—"पी, ब्रह्मा ! दुद्ध, मेरा रस्तां करेग्रां सुद्ध।"

(अर्थात् हे ब्रह्मा ! दूध पी लो और मेरा आगे का मार्ग सरल बना दो)।

इसी प्रकार किसी ब्राह्मण सधवा स्त्री को संक्रान्ति के दिन गुड़ एवं मौली की गुच्छी दी जाती है और अखण्ड सुहाग की कामना करते हुए कहा जाता है—"आट्टा, गुड़ै दी रोड़ी, जीऐ दौं जनें दी जोड़ी।"

अखण्ड सुहाग के लिए ही एक और 'बेआ' भी डुग्गर प्रदेश में प्रचलित है, 'बेआ' लेने वाली यहां भी सुहागन ब्राह्मणी ही हुआ करती है। 'बेआ' देते समय कहा जाता है—"पंज बीड़े मत्थे बिन्दी, सर्व सुहागन कुसे नेईं निंदी।" (अर्थात् जिस के माथे सिन्दूर की बिंदिया लगी हो उस सुहागन स्त्री की कोई निंदा नहीं करता)।

डुग्गर प्रदेश में यह धारणा प्रचलित है कि सधवा स्त्री यदि देह छोड़ कर यमलोक भी जाती है तो भी उसे किसी प्रकार की दुःख यातना नहीं भोगनी पड़ती। धर्मराज उसके माथे की बिंदिया देख कर उसे उसके किये हुए कुकर्मों का लेखा-जोखा यह कह कर नहीं पूछता कि उसके कर्मों का फल भुगतने वाला उसका पति अभी उसके पीछे है—जब वह यमपुरी पहुंचेगा तो सब हिसाब-किताब कर लिया जायेगा। स्पष्ट है कि सुहागन स्त्री को इहलोक में ही नहीं परलोक में भी किसी प्रकार की बाधा नहीं उठानी पड़ती, यदि पत्नी पति को अधिक प्रिय है तब तो सोने पर सुहागे वाली बात होती है। ऐसी प्राणवल्लभा स्त्रियों के विषय में ही तो डुग्गर के लोक कवि ने कहा है—"उऐ रानी जेड़ी खसमैं भानी, जेड़ी खसमैं नेईं भानी, ओ ठेडे खानी।" (अर्थात् वही रानी जो पिया के मन भाए)।

एक और 'बेआ' है जिसमें पांच बादाम और रंगीन दातुन संक्रांति को किसी सुहागन ब्राह्मणी को दी जाती है और निम्नलिखित बोल बोले जाते हैं—"पंज बादाम छेमा बीड़ा, कदें बनां नेईं नरक दा कीड़ा।" (अर्थात् पांच बादाम और छठा दातुन का बीड़ा इस लिए दे रही हूं कि कहीं नरक का कीड़ा न बनूं)।

लोक-परलोक सुधारने की चाह से ही एक और 'बेआ' प्रारम्भ किया जाता है। प्रत्येक मास में संक्रान्ति को, छड़ी पर आटे का दीया जला कर घर के मुख्य द्वार के बाहर रख दिया जाता है ताकि आने-जाने वालों को प्रकाश मिल सके, दीया रखते हुए कहा जाता है—"गास दीया बाल्लेआ, निकल जीआ सखाल्लेआ।"

हमारे डुग्गर प्रदेश में अन्तिम क्षणों में आटे का दीया जलाने की प्रथा

प्रचलित है, सम्भवतः अमुक 'बेआ' उस प्रथा की पूर्ति करता है, श्वासों की क्या प्रतीति? कब देह से निकल जायें, उस घड़ी न जाने दीया मिल भी पाये या नहीं। अतः जीवन में ही उस दीये को जलाने की रीति क्यों न पूरी कर ली जाये।

हमारे हां प्रायः कहा जाता है कि देह त्यागने के उपरान्त रूह को वैतरणी नदी पार करनी पड़ती है। पुण्यात्मायें तो इसे सुविधा से पार कर लेती हैं पर पाप त्मायें बड़ी यातनाएं भोगती हैं, सम्भवतः इसी भय से भयभीत होकर मल्लाह को 'बेआ' दिया जाता है। प्रत्येक संक्रान्ति को मल्लाह भोजन दिया जाता है। साथ ही दरया के उस पार जाने वाले यात्रियों का और इस ओर आने वालों का भाड़ा दिया जाता है। साल के बाद मल्लाह को एक पोशाक, नाव को ढांपने के लिए कपड़ा तथा चांदी का चप्पू दिया जाता है। इस 'बेआ' से वैतरणी पार करना सुगम हो जाता है, ऐसी डुग्गर की नारियों की आस्था है।

पुराने समय में हमारे सभी गांवों में पुलिस थाने नहीं हुआ करते थे। अतः चोरों डाकुओं से रक्षा करने के लिए प्रहरियों को नियुक्त किया जाता था। इन प्रहरियों को संक्रान्ति के दिन भोजन दिया जाता था और बारां बार 'बेआ' दे चुकने के उपरान्त वस्त्र, कम्बल तथा कुछ पैसे देने की प्रथा प्रचलित थी। आज भी कहीं-कहीं यह 'बेआ' दिया है।

गलियों-गलिहारों की सफाई करने वाली मेहतरानी को हर संक्रान्ति को भोजन और वर्ष के बाद एक झाड़ू टोकरी और वस्त्र तथा पैसे देने का 'बेआ' भी प्रचलित है। इसके अतिरिक्त कुछ और 'बेए' भी हैं, जो वर्ष में एक बार ही दिये जाते हैं जैसे 'करवाचौथ का बेआ' एवं 'बिद्दी का बेआ' ये दोनों 'बेए' पुत्रवधुओं द्वारा सास को दिये जाते हैं। इन 'बेओं' में बादाम, मट्ठियां, हरा नारियल एवं कुछ नकद रुपये रखे गए होते हैं। 'बिद्दी' के 'बेआ' में कुछ लोग केवल मट्ठियां ही रखते हैं 'करवाचौथ' के 'बेआ' वाली थाली में चावलों से भरा एक करवा तथा कटोरी में घी से जलाई हुई ज्योति धरी होती है। 'बेआ' रात्रि को चन्द्रमा-पूजन करने के उपरान्त ही दिया जाता है, यदि सास कहीं दूर के स्थान पर हो तो पुत्रवधु अपने पति को ही उस समय 'बेआ' दे देती है जो बाद में सास को पहुंचा दिया जाता है। यदि सास स्वर्ग-सिधार चुकी हो तो 'बेआ' ससुर महोदय को दिया जाता है, वह भी जीवित न हो तो 'बेआ' जेठ अथवा जेठानी को या फिर बड़ी ननद को ही दे

दिया जाता है ।

'बिद्धी' का व्रत करवाचौथ से पूर्व की पूर्णिमा को रखा जाता है, इस व्रत को भी स्त्रियां निराहार रह कर पुत्र की दीर्घायु के लिए शुभ-कामनाएं करती हैं । इस व्रत को भी संध्या के समय 'बेग्रा' सास को दिया जाता है ।

'करवाचौथ' का 'बेग्रा' तथा 'बिद्दी' का 'बेग्रा' देने की प्रथा डुग्गर प्रदेश के पड़ौसी प्रदेश पंजाब में भी प्रचलित है, पर दूसरी ग्रोर कश्मीर में इस का बिल्कुल प्रचलन नहीं है ।

उक्त विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि डुग्गर का भूभाग जहां एक ग्रोर ग्रपने कई विभिन्न रीति-रिवाजों के कारण भारत के ग्रन्य भागों से कई बातों में ग्रपनी स्वतन्त्र सत्ता रखता है, वहां दूसरी ग्रोर कई क्षेत्रों में इस की पड़ौसी देशों से सांझ भी है, 'बेग्रा' प्रथा इन दोनों ही मतों की पुष्ठि करती है ।

नोट—'बेग्रा' देने के समय बोले जाने वाले लोक-कवितांशों की प्राप्ति मुझे ग्रपनी पूजनीया मां श्रीमती रामरक्खी जी से हुई है ।

□

लोक मानस के दर्पण में

डुग्गर के लोक-विश्वास और प्रतीक

—वीणा गुप्ता

लोक-विश्वासों का समाज पर गहरा प्रभाव होता है और समाज का प्रभाव संस्कृति पर अमिट है। इसलिये इन्हें किसी प्रदेश समाज अथवा जाति का अटूट अंग माना जाता है। संस्कृति के ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजनैतिक, औद्योगिक एवं सामान्य जन-जीवन सम्बन्धी तत्वों के दर्शन तो राज-कार्यों, नहरों-दरियाओं, सैनिक परम्पराओं उद्योग-धन्धों तथा घर-घृहस्थ के अध्ययन से हो जाते हैं किन्तु इनकी वास्तविक प्रकृति एवं रूप-सौंदर्य लोक-विश्वास और प्रतीक-योजना के दर्पण के बिना स्पष्टतः दृष्टिगोचर नहीं होता।

डुग्गर के लोक विश्वास—डुग्गर की सीधी-साधारण, सरल एवं भोली जनता, धार्मिक-अन्धविश्वासों कट्टरता तथा संकीर्णता से पूर्णतया विमुक्त है। यह विशेषता लोक-विश्वासों में भी स्पष्ट झलकती है। इस क्षेत्र में मूर्ति-पूजा को विशेष मान्यता प्राप्त है, क्योंकि यहां प्रत्येक छोटा-बड़ा स्थान शहीदों के स्मारकों तथा देवी-देवताओं के मन्दिरों से सनाथ है।

कुल देवता और सजैवती (सत्य और शील की रक्षा के लिये आत्म-बलिदान करने वाली नारी) का डुग्गर समाज में विशिष्ट स्थान है। सभी शुभकार्य इन्हीं के स्तुतिगान से आरम्भ किये जाते हैं। पुत्रोत्पत्ति, नामकरण, मुण्डन तथा विवाह कार्यों की प्रत्येक रीत परम्परा कुलदेवता और शीलवती के स्मरण से ही सम्पन्न होती है—

धन्न मेरे बावा, धन्न सीलवैंती,
धन्न बावे दी कमाई,
बे आं सतजुगी मेरे बावा।

शुभावसरों के अतिरिक्त लोग मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए भी इन देवी-देवताओं की शरण लेते हैं और आशा के पूर्ण होने पर भेंट चढ़ाते हैं।

भोले भण्डारी (महादेव शिव) की पूजा मान्यता में भी डुग्गर वासियों की विशेष श्रद्धा है। इसलिये यहां स्थान-स्थान पर शिवालयों में प्रातः काल सवेरे ही पूजा, घण्टियों तथा आरती की घनघोर सुनाई पड़ती हैं—

अन्न-धन देआं परमेसरा,
अटल देआं बो सुहाग।
भोले तेरी आरती ॥

शुद्धमहादेव, शिवखोड़ी, पीरखोह, नागवीरेश्वर और पंचवक्तर इस क्षेत्र के प्रसिद्ध शिव-मन्दिर हैं, जहां धार्मिक महत्व के अवसरों पर लोग तीर्थ-स्नान के लिये जाते हैं और भारी मेले लगते हैं।

डुग्गर के जन-जीवन में शिव के साथ-साथ शक्ति-पूजन भी विभिन्न रूपों में प्रचलित हैं। वैष्णों, दुर्गा, महामाया, ज्वाला, महाकाली, सरस्वती, महालक्ष्मी और शीतला के रूपों में देवी की महिमा गाई जाती है। इतना तो ज्ञात ही है कि कटड़ा से चौदह किलोमीटर ऊंचाई पर पर्वत की गोद में वैष्णों देवी की पवित्र गुफा है, जहां हर वर्ष लाखों की संख्या में लोग यात्रा के लिये जाते हैं। कटड़ा से गुफा तक का रास्ता पैदल ही तय करते हैं और साथ-साथ देवी की स्तुति में भेटें गाते एवं जयकारे लगाते जाते हैं—

जाना, जाना ऐ जरूर मेरा तरसै जिया,
शेरांवाली दे दरबार, मेरा तरसै जिया,
हाथी-घोड़े में नेईं जाना,
पैदल जाना ऐ जरूर, मेरा तरसै जिया।

इसी प्रकार—

ख'ल्ला-ख'ल्ला देसा, देवी दियां धारा,
इक्कै भौन बनानियां,
ख'ल्ला-ख'ल्ला देसा देवी दियां धारा,
इक्कै बटैह्‌ड़ा मंगानियां, देवी तेरे डंग दुआनियां।

भगतों की श्रद्धा और मां की ममता भरी भेंट सुन कर सभी यात्रियों के अन्तःकरण में उत्साह की लहर दौड़ पड़ती है—

माता, उच्चें प्हाड़ें घेरेआ, लभदा नीं कोई रस्ता,
आई जा आई जा बै, भगता मेरेआ,

जन्दा ई सिद्धा रस्ता ।

काँगड़ा (हिमाचल-प्रदेश) में ज्वाला जी का वास है, जिस के दर्शनार्थ अकबर बादशाह भी नंगे-पांव गए थे ।

नंगे-नंगे पैरें देवा अकबर आया,
सुन्ने दा छत्तर चढ़ाया ।

इसी प्रकार 'महामाया' के रूप में देवी की स्तुति गाई गई है—

देविये तूं गट खोलेआं मेरा हे ममाया,
बाला रे सुन्दर भवन बनाया कालिया धारा,
देविये तन-हर बर्छी छंडियै हे ममाया,
बाला रे भैरों दा शीश कटाया ।

इन के अतिरिक्त बिलावर के पास सुकराल गांव में सुकराला देवी, किश्तवाड़-भद्रवाह के क्षेत्र में 'सरथल देवी' नगरोटा में 'शीतला देवी' वैष्णोदेवी के रास्ते में ही 'आध कुमारी' और जम्मू शहर में तवी के पूर्वी किनारे बाहु के किले में 'महाकाली' का मन्दिर है । इसे 'बाहवे वाली' कहा जाता है ।

कार्तिक और चैत्र मास के नवरात्रों में इन सभी-स्थानों पर बहुत रौनक रहती है । भगतों एवं यात्रियों की भीड़ बढ़ जाती है । धार्मिक वृत्ति वाले लोग नवरात्रों के सभी दिनों में व्रत रखते एवं पूजा-पाठ में व्यस्त रहते हैं । विशेष-रूप से कन्याएं अति श्रद्धा से देवी की शरण लेती हैं । घर-घर में 'साख' (खेती) बीजी जाता है, दीवारों पर मिट्टी से देवी की प्रतिमा बनाई जाती है, जिस का पूजन आम-तौर पर कन्याएं इकट्ठे मिल कर करती हैं—

माता थाल थलै बिच पूड़ियां,
मेरी देवी गी पूजन कुड़ियां ।

नवरात्रों के अन्तिम दिन सम्पूर्ण डुग्गर-देश में कंजक पूजन (कन्याओं को मिष्ठान्न, पैसे, वस्त्र, चूड़ियां आदि विशेष भेंट दी जाती है) किया जाता है । इसके साथ ही, बीजी गई 'साख' को भी विदा किया जाता है ।

मेरी मैया दियां सौ सठ कंजकां,
पूजदेआं चिर लग्गा, पूजदेआं चिर लग्गा,
ए मेरी माता रानी, कांगड़ा शैह्‌र चंगा ।

इतना ही नहीं 'चेचक' और इसके प्रकारों को भी माता का कोप मानने का अन्ध-विश्वास भी इस क्षेत्र में घर किये हुए है । किसी भी प्राणी को 'झंझल' 'काकड़ा' 'खसरा' अथवा चेचक निकलने का संकेत 'माता' के नाम से

किया जाता है, और इनके मुड़ने पर रोगी को शीतला के मन्दिर में ले जाकर छींटा दिलवाया जाता है। हो सकता है कि देवी के प्रति लोगों के मनों में अगाध श्रद्धा के कारण यह अन्ध-विश्वास दृढ़ता से पांव जमाता गया हो।

श्री रामचन्द्र जी की भी डुग्गर की धार्मिक पृष्ठभूमि में विशेष मान्यता है। जम्मू शहर के सब से बड़े मन्दिर का नाम ही 'रघुनाथ जी का मन्दिर' है। वैसे भी प्रातः लोग जब एक दूसरे से मिलते हैं तो 'राम-राम' कहते हैं। स्तुति गीतों में भी 'श्रीराम' को विशिष्ट स्थान प्राप्त है—

ओ मना अभिमानिया, तूं राम जपदा नेईं।
आमली दा सब्ज बूंटा, अवज भुलदा नेईं।
ओ मना, अभिमानिया, तुगी राम चेतै नेईं।

राम जी के साथ उनकी आदर्श पत्नी 'सीता जी' को भी बड़ी श्रद्धा से स्मरण किया जाता है—

पति राम प्यारे ! सीता भुलदी नेइयों,
सीता भुलदी नेइयों, बनां बिच रुलदी नेइयों।

विवाह-अवसरों पर गाए जाने वाले गीतों (घोड़ियों एवं सुहागों) में भी रामचन्द्र जी की पर्याप्त चर्चा है। एक सुहाग में कन्या अपने वर की कामना श्रीराम जी के रूप में करते हुए कहती है—

बर होयै सिरीराम, लछमन देर होऐ,
मात कौशल्या होयै सस्स, सौह्रा दशरथ होयै,
में ते मंगनियां जुद्या जी दा राज,
पंघूड़े बैठी हुकम करां।

'कृष्ण भक्ति' में भी डुग्गर वासियों का विश्वास कम नहीं। बड़ी-बड़ी कीर्तन मण्डलियों के नाम 'श्रीकृष्ण' के नाम पर हैं। सत्संगों और कीर्तनों में गाए जाने वाले भजनों एवं देव-गायनों में श्रीकृष्ण की महिमा विशेष रूप से गाई गई है :—

कृष्ण जदूं लेआ अवतार,
कम्बेआ कैंस दा दरबार।
खुल्ले जंदरे त्रुट्टियां हत्थकड़ियां,
वसुदेव उस बेल्लै अक्खीं दे तारे गी।
गोकुल लेई चले राजदुलारे गी,
करियै जमना पार।

श्रीकृष्ण के (बौंसरी आला) विशेषण से अलंकृत होने के कारण भजनों में श्रीकृष्ण की बांसुरी की भी विशेष चर्चा है :—

अद्धी राती बौंसरी बजाई ।
मेरे शाम जी, अद्धी राती बौंसरी बजाई ।

घोड़ियों और सुहागों में भी वर को 'कृष्ण' और वधू को 'राधा' के रूप में देखा गया है :—

कन्या तुसाढ़ी राधके, अस ते कृष्ण मुरारी आं,
लै जानी रथ पर चाढ़ी के ।

इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण के मन्दिरों में भी लोग बड़ी श्रद्धा-भावना से पूजा-पाठ करते हैं, जहां जन्माष्टमी के अवसर पर मेले लगते और झूले सजते हैं । इस दिन लोग व्रत रखते हैं, कई लोग तो निराहार रह कर रात को बारह बजे जन्म-पूजा के पश्चात् चरणामृत लेकर भोजनादि करते हैं । देवी देवताओं की भांति वट और तुलसी पूजन में भी लोगों की अपार श्रद्धा है । प्रातःकाल ही महिलाएं वट के हरे-भरे वृक्ष को जल से सींचती हैं, चावल, मीठा, सिन्दूर इत्यादि भी चढ़ाती हैं । सोमवार को विशेष रूप से वट पूजा होती है, कुछ लोग तो हाथों काता सूत, यज्ञोपवीत और दूध मिश्रित जल चढ़ाते हैं । लोगों का विश्वास है कि ऐसा करने से अटल सुहाग के साथ-साथ दूध-पूत का सुख भी प्राप्त होता है । रविवार को न तो वट को जल चढ़ाया जाता है और न ही इसके पत्ते तोड़े जाते हैं ।

यहां तुलसी-पूजन का भी विशेष महत्त्व है और तुलसी को माता भी कहा जाता है । श्रद्धालु महिलाएं रोज प्रातः इसके आगे दीपक जलाती हैं और जल चढ़ाती हैं । लोक विश्वास है कि तुलसीदल से पापों का नाश होता है, रोग मिटते हैं और दुःखों से मुक्ति प्राप्त होती है । किसी भी प्रकार के कथा-समापन अथवा सामान्यतया भी चरणामृत बनाते समय तुलसीदल का प्रयोग किया जाता है । यहां तक कि अन्तिम श्वासों पर भी मरनासन्न मनुष्य के मुख में गंगाजल के साथ तुलसीदल डाला जाता है । रविवार को तुलसी को भी जल नहीं चढ़ाते । कार्तिक मास की एकादशी को जिसे 'दीपकों वाली एकादशी' भी कहा जाता है तुलसीपूजन विशेष रूप से सम्पन्न होता है और व्रत भी किये जाते हैं । इस अवसर पर तुलसी को विवाहिता का रूप देकर उसे रंग-बिरंगी किनारी वाले कपड़े पहना कर शृंगार किया जाता है ।

जहां तक डुग्गर के लोक विश्वासों का सम्बन्ध है, इस क्षेत्र के लोगों का

हृदय अति विशाल है जिसका प्रमाण हमें सिक्खों के गुरुद्वारों के प्रति नतमस्त
होने एवं मुसलमान पीर-फ़कीरों की दरगाहों पर उनकी सत्ता के महिमा-ग
से भी प्राप्त होता है :—

ओ सच्चेआ मेरा ध्यान तेरै बल्ल ।
मेरे हत्थ बिच छापां डूठियां
मेरा पीर सच्चा, में भूठियां ।
मेरा ध्यान तेरे बल्ल ।

डुग्गर समाज में प्रचलित प्रतीक :—लोक विश्वासों और प्रतीकों का
प्रगाढ़ और परस्पर निर्भर रहने वाला सम्बन्ध है, क्योंकि लोग प्रतीकों
जीवन में विशेष स्थान उसी समय देते हैं, जब वह उन पर पूर्ण विश्वास
जाने के कारण उनके भरोसे रहने लग जाते हैं, किन्तु सूक्ष्म अन्तर फिर
स्थान बना ही लेता है। लोक विश्वासों में जैसा कि हमारे समक्ष ही
धार्मिक आस्था की पावन भावना का वास है। किन्तु प्रतीक योजना
कहीं-कहीं अन्धविश्वास भी घर किये हुए हैं। जिनके वहम में पड़ कर लोग कु
दिनों अर्थात् वारों का निषेध करने के कारण हानि उठाते हैं। उदाहरण :-
"दुध सनिच्चर नीं जाना पहाड़" पर भरोसा करने वाले लोग या तो इन दिन
से पहले ही चल पड़ते है अन्यथा बाद में जाने का विचार करके व्यर्थ में सम
गंवा डालते हैं।



कश्मीरी पंडितों में शादी की रस्में

—शहीर इमाम

कश्मीर की घाटी जिस प्रकार प्राकृतिक-सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है उसी प्रकार वहां के लोग भी सुन्दरता में कम नहीं। कश्मीर के दामन में हिन्दू और मुस्लिम भाई-चारे का सुन्दर उदाहरण हर जगह देखने को मिलता है। इस घाटी को लोग प्राचीन काल से ऋषियों की भूमि यानि तपोवन के नाम से पुकारते आ रहे हैं।

अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के कारण कश्मीरी पंडित, समाज में अपना एक अलग स्थान रखते हैं। युवक अधिकतर सरकारी नौकरियों में होते हैं, यद्यपि वे आज कल प्राईवेट कामों में भी रुचि लेते हैं। सरस्वती की इन पर विशेष कृपा रही है।

कश्मीरी पंडितों की यह रीत है कि जब युवक अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है, तो उसकी शादी उसकी मर्जी से विशेष रस्मों-रिवाज के अन्तर्गत की जाती है। शहर और गांव में इसको मनाने का अपना-अपना अलग तरीका होता है। वर-बधू की आयु में अधिक अन्तर नहीं होता है।

शादी की रस्म से पहले एक और रस्म अदा की जाती है, जिसे मंगनी कहते हैं, कश्मीरी में इसे "गुन्डुन" कहते हैं। इस दिन लड़के वालों की ओर से दूल्हे की बहन अपनी होने वाली भाभी के पास आकर उसे टीका लगाती है, और उपहार के रूप में ससुराल वालों की ओर से उसको स्वर्णाभूषण तथा अन्य वस्त्रादि प्रदान किये जाते हैं। दोनों घरों में हर्ष का वातावरण छाया रहता है। इसी प्रकार लड़की वाले भी उपहार के तौर पर धन तथा विभिन्न प्रकार की वस्तुएं लड़के वालों के घर पर भेजते हैं। इस प्रकार इस दिन धनादि का

आदान-प्रदान होता है। लड़की वालों की ओर से चांदी के कटोरे में मलाई भेजी जाती है, जिसे दूल्हा को खिलाया जाता है।

कभी-कभी सगाई से पहले एक और रस्म भी अदा की जाती है। इस रस्म के अनुसार लड़की वालों की ओर से लड़के को देखने तथा लड़के वालों की ओर से लड़की देखने की अपौचारिकता पूरी की जाती है। इस अवसर पर लड़का तथा लड़की दोनों उपस्थित होते हैं, और यदि जान-पहचान न हो तो एक दूसरे को जानने का प्रयत्न करते हैं। यदि दोनों ओर से संतुष्टि हो जाए तो मंगनी और शादी की तिथि पक्की की जाती है। इस दिन से लेन-देन का सिलसिला आरम्भ हो जाता है। तदोपरान्त शादी की तिथि निश्चित की जाती है। शादी का दिन मुहूर्त निकाल कर तय किया जाता है। कार्य-क्रम (प्रोग्राम) के अनुसार मेंहदी रात, देवगान तथा "द्युगान" की तिथि तय की जाती है। मेंहदी रात से पहले एक और मुहूर्त निकाला जाता है। इसके अनुसार लड़की वालों के यहां "मस मुचराबुन" की रस्म अदा की जाती है। इस दिन विशेष ढंग से घर की सफाई की जाती है, जिसे "लिबुन" कहते हैं। "लिबुन" को रस्म की तरह मनाते हैं। तदोपरान्त उस दिन दुल्हन के बाल हर्ष और उल्लास के वातावरण में खोल दिये जाते हैं। ये रस्म लड़की की फूफी अदा करती है। जिसे कश्मीरी में "वनवून' कहते हैं। अन्य प्रौढ़ औरतें गायन करती रहती हैं। इस दिन विशेष प्रकार की खिचड़ी बनाई जाती है, जिसे "बर" कहते हैं, इसे मुहल्ले वालों तथा अन्य रिश्तेदारों में बांटा जाता है। उस दिन से हर रात तुमुकनारे, मटका, हरमोनियम आदि पर गाना-बजाना आरम्भ हो जाता है जो शादी के दिन तक चलता रहता है।

मेंहदी रात के दिन, रात के समय सुघड़ता के साथ दुल्हन को हांथ पांव में मेंहदी लगाई जाती है। इस समय चारों तरफ संगीत की सुमधुर ध्वनि से वातावरण हर्षमय बना रहता है। लड़की की सहेलियां एवं अन्य महिलाएं इस में बड़ी उत्सुकतापूर्वक हिस्सा लेती हैं। दूल्हे को भी थोड़ी सी मेंहदी लगाई जाती है। वहां भी गाने-बजाने का प्रोग्राम होता है।

देवगान के दिन, दूल्हा-दुल्हन अपने-अपने घरों में स्नान करते हैं, और इस प्रकार "कन्या स्नान" की रस्म अदा की जाती है। फिर ये पूजा-पाठ में भाग लेते हैं।

शादी के दिन दूल्हा-दुल्हन सुबह-सुबह उठते हैं और नाई को घर पर बुलाया जाता है। उसे कपड़े, चावल एवं पैसे दिये जाते हैं। इसके बाद

दूल्हा स्नान करता है और नए कपड़े पहनता है, विशेष कर अचकन तथा तंग मोरीदार पाजामा। दूल्हे का पिता उसे नई पगड़ी बांधता है। पगड़ी के इर्द-गिर्द विशेष प्रकार की माला (मनन् माला) बांध दी जाती है। फिर उसे एक विविधरंगी गोल चक्र (रंगोली) पर पांव रखने को कहा जाता है। रंगोली को कश्मीरी में "वियुगह्" कहते हैं। दूल्हे का छोटा भाई शंख बजा कर बारात को प्रस्थान करने का संकेत देता है। दूल्हे की मां दूल्हे को विदा करती है और घर की बुजुर्ग औरतें शुभ-गायन आरम्भ कर देती हैं। दूल्हा रवाना होता है, और बराती उसके पीछे चलते हैं। उसके संग कार में निकटतम् सम्बन्धी जन बैठते हैं। अक्सर मित्र भी दूल्हे के साथ होते हैं। जब बारात लड़की वालों के यहां पहुंच जाती है तो दूल्हे तथा बारातियों का स्वागत् दुल्हन के माता-पिता तथा अन्य अतिथि करते हैं। इस समय बारातियों की खातिरदारी की जाती है।

इसके पश्चात् दूल्हा को दुल्हन के आंगन में रंगदार चक्र (रंगोली) पर अपने पांव रखने होते हैं और कुछ समय में दुल्हन को भी लाया जाता है। दोनों साथ-साथ रंगोली पर खड़े होते हैं। दुल्हन की मां युगल जोड़ा को मिष्ठान्न खिलाती है। दूल्हे की मनन् माला भी बदल दी जाती है। फिर दुल्हन के मकान में प्रवेश करने से पहले द्वार की पूजा की जाती है। इस विधि में दो पुरोहित—एक लड़की, एवं एक लड़के वालों की ओर से—हिस्सा लेते हैं।

इसके बाद दूल्हा-दुल्हन अग्नि कुंड के सामने बैठते हैं और शादी की असली रस्म अग्नि पूजा से आरम्भ होती है। इस पूजा के समय दूल्हा-दुल्हन का मिलाप अनोखे ढंग से करवाया जाता है। संस्कृत के श्लोकों के बीच पूजा जारी रहती है। इस अग्नि पूजा में कन्या का पिता विशेष भूमिका अदा करता है। वह कन्यादान के समय अपनी पुत्री को अपने घुटनों पर बिठा कर मंत्र पाठ करते हुए कन्यादान करता है। इससे पहले पुष्पांजलि की रस्म होती है। जिस में सभी लोग हिस्सा लेते हैं। तत्पश्चात् दूल्हा-दुल्हन अपनी सोने की अंगूठी एक-दूसरे से बदल लेते हैं। इसी समय शरारत करने का अवसर भी मिल जाता है। इसे कश्मीरी भाषा में 'अथवास' कहते हैं। तब दूल्हा-दुल्हन एक दूसरे का हाथ थाम के सात रुपये के नोटों पर चलते हैं। पूजा के समय पंडित अर्थ समझाते हुए संस्कृत के श्लोकों को पढ़ते हैं और दूल्हा-दुल्हन अपना-

अपना उत्तरदायित्व निभाने का वचन देते हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दू धर्म के अनुसार अग्नि के फेरे लिये जाते हैं। पूजा समाप्त होने के बाद दुल्हन अलग कमरे में अपनी सहेलियों के पास जाकर विश्राम करती है। विश्राम के पश्चात् दुल्हन को खिड़की से बाहर निकाला जाता है। यह रस्म भी कन्यादान के ही अन्तर्गत आती है। फिर दुल्हन पति के साथ रंगोली पर खड़ी होती है, और उसकी मां उन्हें बर्फ़ी खिलाती है। तभी दूल्हे का छोटा भाई शंख बजा कर वहां से रवाना होने की सूचना देता है। दूल्हा-दुल्हन कार में बैठ कर विदा होते हैं। इस अवसर पर दुल्हन के माता-पिता और सखियां भावुक हो उठती हैं और आंखों से आंसू बरस पड़ते हैं। घर पहुंचने पर शंख-ध्वनि एवं गायन से उनका स्वागत् किया जाता है। दूल्हा-दुल्हन पुनः रंगोली पर चलते हैं और दहलीज़ पार करने से पहले उनकी आरती उतारी जाती है। अब दूल्हा की बहन दरवाज़ा बन्द कर लेती है और उसी समय दरवाज़ा पुनः खोलती है, जब उसे उसका भाई कोई उपहार प्रदान करता है। इसके बाद दोनों रसोई घर में प्रवेश करते हैं, जहां चौके पर दोनों को बैठा कर उनके मुंह जुठलाये जाते हैं।

तत्पश्चात् दुल्हन को अलग कमरे में सम्मान पूर्वक बिठाया जाता है। जहां उसे देखने के लिए लोगों का तांता बंधा रहता है। दूल्हा अपने कमरे में शादी के वस्त्र बदलता है। यार-दोस्त खुशियां मनाते रहते हैं। शाम को पति-पत्नी दोनों वधू के घर जाते हैं, जिसे कश्मीरी में "सत्रात" कहते हैं। यहां उनकी खूब आव-भगत होती है। खाना-पीना वहीं होता है। इसके बाद दोनों को विदा किया जाता है, और सगुन के तौर पर साथ में दही का मटका, चावल, दूल्हा-दुल्हन के वस्त्रादि उपहार स्वरूप दिये जाते हैं। घर पहुंचने पर दूल्हा-दुल्हन की "आलत" उतारी जाती है। अपने कमरे में जाने से पहले दुल्हन की ननद दोनों को दही एवं अखरोट खिलाती है। तब पति-पत्नी अपने सुहागरात के कक्ष में चले जाते हैं।

शादी के कई दिन बाद तक लोग दुल्हन को देखने आते रहते हैं। शादी की रस्म पूरी हो जाने के बाद भी लेन-देन तो पूरी आयु तक चलता रहता है। साल भर में ऐसे कई अवसर आते हैं, जैसे—शिवरात्रि, नवरात्रि, दीपावली, जन्म अष्टमी पति और पत्नी के जन्म-दिन आदि। एक और भी रस्म मनाई जाती है, जिसे "शिशुर" कहते हैं। यह दिवस सास-ससुर को घर लाने की खुशी में मनाया जाता है। इस दिन बहुत से लोगों को निमंत्रित किया जाता है।

दुल्हन के मैके वाले उसके ससुराल में उपहार भेजते हैं। "शिशुर" जाड़े में मनाया जाता है। शादी की वर्षगांठ भी बड़ी धूम-धाम से मनाई जाती है। एक और दिवस "फिरसाल" भी मनाया जाता है। इसमें ससुराल वाले अपने जमाई को अपने घर आमंत्रित करते हैं, और शानदार दावत एवं उपहार प्रदान करते हैं। इससे पहले दुबारा ससुराल नहीं जाते हैं।

यद्यपि लेन-देन और दहेज़ की रस्म बुरी है और इसके विरुद्ध सभी स्तरों पर आवाज़ उठाई जा रही है तो भी आश्चर्य की बात है कि कश्मीरी पंडितों में यह कुरीति दिन प्रति दिन ज़ोर पकड़ती जा रही है।



लद्दाखी लोकगीतों के दर्पण में लद्दाख की संस्कृति

—ङवांग छेरिंग

लद्दाख के लोग लोकगीतों के गाने व सुनने में बड़ी ही रुचि रखते हैं। यही कारण है कि विभिन्न पर्वों, समारोहों और त्यौहारों आदि पर लोग बड़े ही प्रेम से जिन लोक गीतों का गायन करते हैं, उनमें उत्साह और मनोरंजन की भावना विद्यमान रहती है।

लद्दाखी साहित्य प्राचीन काल से ही सम्पन्नता का रहा है। इसमें बौद्ध साहित्य से सम्बन्धित सैंकड़ों ग्रन्थ, महाग्रन्थ, काव्य व महाकाव्य आज भी उपलब्ध हैं, जिसमें कि बौद्ध धर्म से सम्बन्धित बहुत सारे कोश सुरक्षित हैं, जिनके मनन में लोगों का ध्यान आज तक खोया रहने के कारण, जनजीवन से सम्बन्धित इन लोक गीतों का संकलन करने व इसे प्रकाशित कराने की ओर नहीं गया। यही कारण है कि आज तक हमें लद्दाखी लोकगीतों से सम्बन्धित बहुत ही कम जानकारी उपलब्ध है।

इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम कोशिश भी सन् १९६४ में हुई जबकि जम्मू-कश्मीर अकादमी ने लद्दाख के साहित्यकार श्री टाशी रबग्यास (Tashi Rabgias) को लद्दाख के लोकगीतों को इकट्ठा करने की दावत दी थी। जिसके फलस्वरूप लद्दाखी लोक गीतों पर एक पुस्तक १९७० में अकादमी ही ने प्रकाशित की थी।

लद्दाखी लोकगीतों की उत्पत्ति व विकास के बारे में बहुत ही कम जानकारी हमारे पास है। इस लिए इस विषय पर ज्यादा कुछ कह सकना कठिन है। फिर भी इन गीतों के विकास में इस क्षेत्र की सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक घटनाओं ने अवश्य ही योगदान किया लगता है। क्योंकि लोक गीतों में प्राचीन लद्दाख की सामाजिक दशा, लोगों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, त्यौहारों, धर्म-गुरुओं, धार्मिक स्थानों, राजाओं व राजशासन से सम्बन्धित

अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी हमें इन लोक गीतों के द्वारा मिलती है। इससे यह साफ पता चलता है कि प्राचीन काल से ही लद्दाखियों के जीवन में लोकगीतों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

वैसे लद्दाख के साहित्यकारों ने लोक गीतों के प्रकार के बारे में थोड़ा बहुत लिखा है, फिर भी इस बारे में आज तक एक मत देखने को नहीं मिला। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम एक लेख जे० के० कल्चरल अकादमी द्वारा प्रकाशित 'वार्षिक पत्रिका 'लद्दाखी १९७६' में श्री ठीनलेस दोरजे द्वारा लिखित छापा, जिसका शीर्षक था "लद्दाखी लोकगीतों के प्रकार" इसमें श्री ठीनलेस ने मुख्य आठ प्रकार के लोकगीत माने हैं। इसके बाद एक ऐसा ही लेख उसी पत्रिका के १९७७ के अंक में लद्दाखी गीतकार श्री फुन्होक छेरिंग का लिखा छपा था जिसका शीर्षक था "हमारे गीत व स्वर" इस लेख में श्री फुन्होक ने ११ प्रकार के लोक गीत बताये हैं। इसके बाद लद्दाख के साहित्यकार श्री टाशी रबग्यास ने अपने लेख "लद्दाखी लोकगीत : एक समालोचना" में भी ११ मुख्य प्रकार के लोक गीतों का प्रचलन माना है। इस प्रकार उपरिलिखित साहित्यकारों में लद्दाखी लोक गीतों की विभिन्न किस्मों की संख्या को लेकर मतैक्य नहीं हो पाया है। तो भी लद्दाख में कई प्रकार के लोक गीतों का प्रचलन है जो कि अपने आप में अनूठे हैं। इस प्रकार संक्षेप में हम यदि लोक गीतों की मुख्य किस्मों का अध्ययन करें तो बेहतर होगा—

१. मंगल गीत—लद्दाखी संस्कृति में किसी काम को प्रारम्भ करने के पूर्व मंगल पाठ करने को बहुत ही उच्च स्थान दिया गया है। ठीक उसी के अनुरूप लोक गीतों में हमें तरह-तरह के मंगल गीत, जिसे लद्दाखी में 'स्तेनडेललू' कहते हैं, सुनने को मिलते हैं। इन गीतों में महात्मा बुद्ध व धर्म राज से सम्बन्धित स्तुतियों व नीले आकाश में सूर्य व चन्द्र के प्रतिष्ठित होने सम्बन्धी सुन्दर वर्णन मिलते हैं। ये मंगल गीत ३, ५, ७ स्तुतियों वाले होते हैं जोकि बड़े ही हृदयस्पर्शी होते हैं। इन लोक गीतों का गायन विभिन्न पर्वों व समारोहों के समय शुभ माना गया है।

२. स्तुति गीत—इन गीतों में मुख्यतः राजा, रानियों व राज शासन सम्बन्धी विभिन्न पहलुओं की प्रशंसायें सुनने को मिलती हैं। इसे लद्दाखी में 'जूङलू' कहते हैं। इन गीतों में हमें पुराने लद्दाख के जन-जीवन की सुन्दर झांकी मिलती है। मालूम होता है कि प्रार्थना काल से ही लद्दाख में छंग (एक प्रकार का मादक पेय) के पीने व पिलाने का रिवाज रहा है। ठीक उसी

ढंग से आज कल भी छंग का पेय तैयार करते ही अथवा इसे पीने के उपरान्त लोग जोशीले स्वर में प्रशंसाओं भरे गीतों का गायन करते हैं । जान पड़ता है कि लोगों की सामाजिक हालत अच्छी थी । कानून की दृष्टि से भी राजशासन सुदृढ़ होता था। इस तरह ये गीत रोचक होने के साथ-साथ ज्ञान वर्धक भी होते हैं।

३. विवाह सम्बन्धी गीत—लद्दाख में भी अन्य जगहों की तरह विवाह बड़े ही धूम-धाम के साथ सम्पन्न किये जाते हैं। इन अवसरों पर विवाह के गीत गाये जाते हैं, यहां विवाह सम्बन्धी कई प्रकार के लोक गीतों का चलन है। विवाह गीतों में प्रायः प्रत्येक श्लोक के बाद त्रिरत्न का नाम लेकर अर्पण सम्बन्धी सुन्दर वर्णन सुनने को मिलता है। जिस का सार देवी देवताओं के नाम लेने व उन्हें गवाह के रूप में स्वीकार करने से सम्बन्धित होता है, इन गीतों का गायन भिन्न-भिन्न ढंग से नाच करते हुए भी किया जाता है तथा इनका गायन वधू को लाने के लिए वर के घर से निकलने से आरम्भ होने के साथ शुरू हो जाता है तथा रात भर चलता रहता है। ये गीत बड़े ही मधुर होते हैं। यही कारण है कि उनका गायन लोग सामूहिक रूप से तो करते ही हैं, अकेले में भी इन्हें गुनगुनाया जाता है।

४. धार्मिक गीत—धार्मिक गीतों में लद्दाख के प्रमुख मन्दिरों, (गोम्पाओं) उनके ही प्रधान लामाओं व देवी देवताओं की स्तुति के गीत होते हैं। धार्मिक लोक गीतों में हेमिस गोम्पा व उनके प्रधान अवतारी लामां स्तकछंग रस्या, टिकसे गोम्पा के ८० खम्भों वाले मन्दिर के मंडप की प्रशंसा तथा पेथुप गोम्पा व उनके प्रधान लामां रिन्पोछे बकुला की स्तुति के गीत प्रमुख हैं। इसके अलावा भी बुद्धधर्म व संघ तथा दस कुशल व अकुशल कर्मों सम्बन्धी अनेक धार्मिक गीत शामिल हैं।

५. वीर गीत—वीर गीतों में लद्दाख की प्रमुख पौराणिक कथा 'लीङ केसर' व उनके प्रमुख नायक 'केसर' के जन्म सम्बन्धी अनेक प्रकार के गीत शामिल हैं। इस प्रकार के गीतों को लद्दाखी में 'गिङलू' कहते हैं। इन गीतों में वीरों के शारीरिक बल की प्रशंसा सम्बन्धी गीत शामिल हैं। यह गीत सुनने वालों में स्फूर्ति का संचार करने में समर्थ होते हैं।

६. वियोग गीत—हमारे पास विरह सम्बन्धी अनेक गीत उपलब्ध हैं। ये गीत बड़े ही दर्द भरे व हृदयस्पर्शी होते हैं। इस प्रकार के गीतों को लद्दाखी में 'स्क्योलू' (skyolu) कहते है। इन गीतों में लद्दाख के राजा

देस्काेङ नमग्याल (१६२०–१६३८) की रानी जिल्ज़ा के ऊपर एक बड़ा ही करुणामय गीत लोकगीत प्रेमियों के मुख से सुनने को मिलता है। एक बार ऐसा हुआ कि एक युवराज को जन्म देने के बाद दोनों को एक दूसरे से बिछुड़ना पड़ा। इस प्रकार इसे लद्दाख के इतिहास की प्रमुख घटनाओं में गिना जाता है।

७. व्यंग्य गीत—व्यंग्य गीतों का गायन जब दो जनों या समूहों के बीच का मेल-जोल ठीक न हो तो एक दूसरे पर व्यंग्य करते हुए किया जाता है तथा इस प्रकार के गीतों का गायन आम जनता या महफिल में ठीक नहीं समझा जाता क्योंकि इस से आपस में झगड़ा आदि होने का डर होता है। इस प्रकार के गीतों को 'छिगलू' नाम से जाना जाता है। तथा इसे स्त्री-पुरुष दोनों की उपस्थिति में भी गाया जाता है जिन में किसी की कमज़ोरी को भी दिखाने के प्रयत्न किए जाते हैं। हां—इन गीतों के भाव का समझना अन्य गीतों की तरह आसान नहीं होता क्योंकि इनमें घुमा-फिरा कर बातें बनाई जाती हैं। इन गीतों के गायन का चलन आज भी काफी हद तक मौजूद है जो कि बुराइयों को विद्वता से प्रकट कराने का एक अच्छा साधन है।

८. प्रेम गीत—लद्दाखी साहित्य में भी हमें प्रेम गीतों की झलक दिखाई देती है। जिन का लोक गीतों में अपना स्थान है। इस प्रकार के लोक गीतों में प्रेमी द्वारा प्रेमिका के प्रति उसके सौंदर्य, चाल-चलन आदि पर अतिशयोक्ति पूर्ण गीतों को शामिल किया जा सकता है जोकि भावपूर्ण तथा मिठास भरे होते हैं। प्रेम गीतों का गायन लोग खेती-बाड़ी करते समय भी करते हैं।

६. छंग गीत—लद्दाखी समाज के रीति रिवाजों व संस्कृति में छंग का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसकी उपलब्धि प्रत्येक अवसर पर होना जरूरी होता है चाहे वह खुशी का मौका हो या दुःख का। इस पेय को पवित्र भी माना जाता है तथा इसे भगवान पर भी चढ़ाया जाता है। इस प्रकार लोग छंग के पीने व पिलाने को भी कदापि बुरा नहीं समझते। इस के ऊपर बहुत सारे गीत हैं। इन गीतों में छंग के बनाने के ढंग से लेकर इसे पीने के लिए तैयार होने तक के सुन्दर वर्णन मिलते हैं। इन गीतों के माध्यम से हमें बहुत हद तक प्राचीन लद्दाखी संस्कृति के सम्बन्ध में जानकारी भी मिलती है।

१०. समूह गीत—समूह गीत को 'शोनलू' कहा गया है। समूह गीत गाते समय स्त्री-पुरुष दोनों ही हाथों में हाथ लिए हुए नाच भी करते हैं। इस प्रकार के समूह गीतों के गायन का सब से बड़ा केन्द्र लद्दाख के मुख्य शहर लेह से कुछ

मील दूर 'शे' नामक गांव है जहां दसवीं शताब्दी पूर्व से यह सब चला आ रहा है। आज भी 'शे-सुबला' त्यौहार पर बड़ी धूम-धाम के साथ इसे गाया जाता है। शे सुबला त्यौहार फसल के तैयार होने के मौके पर मनाये जाते हैं।

उपर्युक्त प्रकार के अलावा भी लद्दाख में अन्य कई प्रकार के लोक गीतों का चलन है। जिन में खेती के गीत, तिब्बति जबरो गीत, जिन का गायन नाच के साथ होता है तथा वासना पूर्ण प्रेम गीत आदि है।

उपर्युक्त विभिन्न गीतों के भाव को जब हम समझने का प्रयत्न करते हैं तो हमें प्राचीन लद्दाख का इतिहास, जातक कहानियां, राज-शासन लोगों के जन-जीवन सम्बन्धी अनेक पहलुओं, रहन-सहन, सोचने के ढंग, संस्कृति, कला व सामाजिक स्थितियों आदि का पता चलता है।

इस प्रकार ये लोक गीत असंख्य हैं। हम यह आशा कर सकते हैं कि भविष्य में इनके द्वारा हमें प्राचीन लद्दाखी संस्कृति के बारे में जानने में और अधिक सहायता मिलेगी।

डुग्गर प्रदेश और विवाह-विधि

—डॉ० गंगादत्त 'विनोद'

विवाह एक प्राकृतिक संस्कार है। जिस का फल स्त्रीत्व तथा पुंस्त्व के संयोग से सृष्टि का विस्तार है। भारतीय ऋषियों ने तीन वर्णों के लिये जो सोलह संस्कारों की प्रस्थापना की थी, उन में विवाह संस्कार प्रधान माना गया है। वि उपसर्ग जोड़ कर वह धातु में अन् प्रत्यय करके विवाह शब्द का निर्माण किया गया, जिस का अर्थ है, विशिष्ट प्रकार से धारण करना अर्थात् एक महान् उत्तरदायित्व को ग्रहण करना। भारत में विवाह संस्कार भारतीय संस्कृति का मुख्य अंग समझा जाता है, जिस की आधारशिला धर्म पर रखी गई है। दूसरे शब्दों में यह धार्मिक सम्बन्ध है। इसी कारण स्त्री को धर्मपत्नी के विशेषण से विशेषित किया गया और पति को पतिदेव। यानी भारतीय संस्कृति के अनुसार पति-पत्नी के लिये देवता के समान है और पत्नी उसका वामाङ्। इस स्त्री रूप अंग से हीन पुरुष को 'असर्व' कहा गया है, जिसका अर्थ है 'आधा या अधूरा।' भारतीय संस्कृति ने नारी को इतना ऊंचा स्थान दे दिया कि उसके बिना पुरुष किसी भी देव, पितृ कार्य को अकेले करने का अधिकारी नहीं हो सकता। यज्ञ, दान, तप, पूजा किसी भी धार्मिक कार्य में स्त्री का साथ अनिवार्य है। यह आजीवन निभाया जाने वाला सम्बन्ध है, जिस में शिष्ट एवं धार्मिक शृंगार निहित है। इसी कारण विवाहित दम्पति में वृद्धावस्था में भी परस्पर शृंगार रस की धारा नहीं सूखती, भवभूति ने इसी आशय को लेकर इस विवाह की कैसी सुन्दर व्याख्या की है—

"अद्वैतं सुख दुःखयो रनु गतं सर्वास्ववस्थासु यत्,
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यास्मिन्न हार्यो रसः।"

यह विवाह सम्बन्ध सुख-दुख में एकाकार बना रहता है। प्रत्येक अवस्था में दोनों एक दूसरे के सुख-दुख के साथ बन्धे रहते हैं और बुढ़ापे में भी रस

(शृंगार) का परिहार नहीं करते। सच्चा प्रेम यही होता है, जिस में बुढ़ापे में भी वैसा ही युवावस्था का सा सम्बन्ध बना रहे।

इसी भावना को वेद के एक मंत्र में इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है—

"गृभ्णामि से सौभत्वाय हस्तं मया पत्याजरदार्ष्टिर्यथा सः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वां दुर्गाह पत्याय देवाः॥

(अथर्ववेद)

हे शोभने मैं ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये तेरा हाथ पकड़ता हूं। तू मेरे साथ वृद्धावस्था तक सुखपूर्वक निवास कर। भग अर्यमा आदि देवों ने तुझे गृहस्थी कर्म के लिये मुझे दिया है। इत्यादि। भारतीय ऋषियों के अनुसार विवाह विषय-वासना का उपभोग न होकर ऐहिक आमुष्मिक आमि-वृद्धि का साधन है। ऐहिक (इस जन्म में) उन्नति सन्तानोत्पादन द्वारा परम्परागत वंश गौरव को अक्षुण्ण रखते हुए प्रजातन्तु को अविच्छिन्न रखना है जो व्यावहारिक दृष्टि द्वारा सब का अनुमोदनीय और वांछनीय है। आमुष्मिक (पारलौकिक) उन्नति विवाह द्वारा इस रूप में मानी गई है कि "अपुत्रस्यगतिर्नारित" पुत्रहीन की गति नहीं होती। मरणोपरांत पिण्ड दान के अभाव या और्ध्व दैहिक कृत्य के सम्पन्न न होने के कारण आत्मा अशान्त और उखड़ी हुई रहती है, यद्यपि आज की वैज्ञानिक परिस्थितयों में यह कथन पिछड़ा हुआ है, तथापि यह विचार वैदिक होने के कारण भारतीय संस्कृति के अन्दर आने से अब भी मान्य समझा जा सकता है। युग कोई भी चल रहा हो, किन्तु किसी भी देश की संस्कृति सदा नवीनता के परिप्रेक्ष्य में ही देखी जाती है। संस्कृति देश का जीवन एवं प्राण है। विवाह का दूसरा प्रधान लक्ष्य देव, पितृ ऋण से मुक्ति प्राप्त करना है। इस प्रकार भारतीय विवाह संस्कार इस देश की संस्कृति और धर्म का मुख्य अंग है जो वैदिक काल से चलता आ रहा है।

इस विशाल देश की संस्कृति और मान्यताएं एक हैं। प्रांत-भेद तो प्रशासनिक इकाइयां हैं। भाषा-भेद भी इसकी मौलिक धर्म-ग्रन्थि पर आधारित है, उत्तर भारत की लगभग सभी भाषायें एक ही स्रोत से निकली हैं, जो स्रोत संस्कृत भाषा के रूप में समग्र देश द्वारा मान्य है। यही कारण है कि इस समग्र देश की संस्कारविधि, कुछेक प्रांतों को छोड़ कर प्रायः सभी जगह समान रूप में प्रचलित है। सारे भारत की विवाह-संस्कार-विधि भी इसी प्रकार समान रूप से प्रचलित है। जो विवाह पद्धति बंगाल या गुजरात में प्रयुक्त

की जा रही है, वही कुछ प्रांतीय रूढ़ियों के हेर-फेर के साथ यू० पी०, बिहार आदि प्रांतों तथा जम्मू-कश्मीर राज्य में भी प्रचलित है। अतः डोगरा विवाह विधि वही है, जो सारे देश में परम्परा से प्रचलित होती आई, फिर भी यहां प्रांतीयता के परिवेश में कुछ परम्परागत रूढ़ियां भी साथ जुड़ी हैं।

डोगरा विवाह का पूर्व रूप

विवाह तय करने के पूर्व दोनों पक्षों की बात ठीक स्तर पर बैठाने के लिए एक व्यक्ति माध्यम का कार्य करता है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि प्रति विवाह-आयोजन में माध्यम अनिवार्य रहे। अधिकतर माता-पिता स्वयं बुद्धि और मस्तिष्क द्वारा सोच समझ कर वधू के चुनाव में विचार कर लेते हैं, किन्तु बहुत से माता-पिता ऐसे होते हैं, जिन्हें इस सम्बन्ध में किसी सियाने या अनुभवी पुरुष का दिशा निर्देशन अपेक्षित रहता है। कभी-कभी माध्यम स्वयं अपने स्वार्थवश बीच में टपक कर दोनों पक्षों की मध्यस्थता का कार्य करने लगता है, इस में उसे किसी एक पक्ष द्वारा नियुक्ति की आवश्यकता होती है, जिसे वह अपनी चतुराई द्वारा स्वयं बना लेता है। ऐसे मध्यस्थ कभी-कभी दोनों पक्षों की आंखों में ऐसी धूल झोंकने में समर्थ होकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेते हैं, जिस से वर वधू दोनों अथवा एक का जीवन ही नष्ट हो जाता है, ऐसे मध्यस्थों से अकसर बचा जाता है। मध्यस्थ द्वारा दोनों ओर से बात-चीत हो जाने पर वर वधू के पिता और नज़दीकी सम्बन्धी आपस में मिल कर बात अगर जंच गई तो इस पर सैद्धान्तिक रूप में निर्णय ले लेते हैं। इस कार्य के पश्चात् लड़की वालों की ओर से लड़के की जन्म- कुण्डली की मांग की जाती है। डोगरा प्रदेश में यह विशेषरूप से आवश्यक समझा जाता है। इसके अनंतर दोनों के ग्रहों का मेल देखा जाता है। अगर यह ठीक बैठ गया तो विवाह लगभग तय हो जाता है। इस कार्य में कुछ बाधाएं पड़ने की आशंका भी रहती है। विशेषकर कुण्डली के सप्तम घर (जो पति के लिए पत्नी का और पत्नी के लिए पति का घर माना जाता है) पर बात आकर अटकती है। वहां किसी की कुण्डली में भी कोई क्रूर ग्रह पड़ा हो तो विवाह में अड़चन आ जाती है अन्यथा विवाह तय हो जाता है इस कार्य की समाप्ति के बाद मान लीजिए कि शुभ ग्रहों के कारण दोनों पक्ष विवाह के लिए सहमत हो गए तो आगे का कार्य-क्रम एक-एक करके चलने लगता है। सर्वप्रथम निश्चय हो जाने पर लड़की वाले लड़के को यथा-शक्ति दक्षिणा-उपहार देकर बात पक्की बैठाने की गारण्टी दे देते हैं। इसे डोगरी में 'ठाका' कहा जाता है यानी लड़की वालों ने लड़के को अधिकृत कर

लिया, किन्तु अभी अन्य विशेष उपहार प्रदान करने का समारोह शेष रहता है जो किसी शुभ मुहूर्त पर सम्पन्न किया जाता है।

इस उपहार प्रदान को डोगरी में "सगन देना" कहते हैं। इसके अन्तर्गत उस दिन घर के प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा सम्बन्धी इकट्ठे होकर (कन्या पक्ष के) लड़के वालों को उपहार भेजने की सोचते हैं। उपहार देने की कोई सीमा निश्चित नहीं होती। आर्थिक स्थिति और सामर्थ्य के अनुसार उपहार दिया जाता है। साधारणतः कुछ मेवे के थाल, फलों की टोकरी या टोकरियां एवं दक्षिणा होती है। यह 'सगन' लड़के के घर जाता है, वहां पण्डित द्वारा थोड़ा सा पूजन करवा कर यह सब उपहार लड़के को तिलक के साथ दे दिए जाते हैं। इस कृत्य को वाग्दान कहा जाता है, डोगरी में इसे 'कुड़माई' जिसके हो जाने पर, दोनों, पक्ष विवाह की तैयारियों में जुट जाते हैं। स्वस्थ सुन्दर एवं शिक्षित वर का इस प्रकार चुनाव करने के उपरांत गुरु एवं शुक्र दोनों ग्रहों के अस्त दोष से वर्जित मुहूर्त शास्त्र दृष्टि से निकाल कर शुभ योग में विवाह की तिथि निश्चित की जाती है, गुरु या शुक्र किसी के अस्त होने के समय को डोगरी में 'तारा डुब्बना' कहते हैं। इस 'तारा डुब्बने' के समय विवाह नहीं हो सकता, यह प्रथा सारे भारतवर्ष में है। शुभ मुहूर्त की सूचना वर पक्ष वालों को दे दी जाती है। डोगरों में वे कृत्य इस प्रकार हैं—

प्रथम दिन में 'सगन' दिया जाता है। पंडित को बुला कर गणपति पूजन होता है। फिर किसी सौभाग्यवती स्त्री को वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके पूजन में बैठाया जाता है। उस ने नाक में 'बालू' (आभूषण) और सिर पर लाल दुपट्टा लिया होता है। यही सौभाग्यवती स्त्री आज से लेकर सारे विवाह कृत्य में प्रतिनिधि के रूप में समय-समय पर मांगलिक कार्यों में भाग लेती है। इस दिन पूजन के उपरांत माश और गेहूँ की कुछ मात्रा भिगो दी जाती है और मिट्टी की तीन चुल्हिकाएं बना कर रखी जाती हैं। आज के दिन इतना मात्र ही कार्य होता है। साथ ही इसी दिन पूजन के समय सौभाग्यवती स्त्री लड़के की कलाई में मौली बांधती है। लड़की वालों के घर में भी ऐसा ही कृत्य होता है। वहां लड़की की कलाई में मौली बांधी जाती है। इसे 'गाना बांधना' कहते हैं। इस कार्य में नव-ग्रह-पूजन भी किया जाता है।

सगन हो जाने के अनन्तर तीसरे दिन 'गण्डी' नामक कृत्य का सम्पादन किया जाता है। इस में लड़के वालों की ओर से लड़की को खाद्य वस्तुओं का एक उपहार भेजा जाता है, जो केवल बादाम, छुहारे तथा किशमिश का मिला

जुला सवा सेर का परिमाण रहता है। इसे लाल कपड़े की थैली में डाल कर ऊपर से मौली से बांध कर दिया जाता है, इस के साथ कुछ दक्षिणा भी रहती है। पुरोहित इन वस्तुओं को उठा कर लड़की के घर ले जाता है, वहां उस का सत्कार किया जाता है। संक्षिप्त पूजन के बाद मेवा कन्या की गोद में डाला जाता है और इसके अनन्तर लेकर बांट दिया जाता है। यह कार्य विवाह के पूर्व अधिक मांगलिक और सुशकुनकारी समझा जाता है।

अब विवाह-कार्य के एक दिन पहले शान्ति कृत्य आ पड़ता है जिसे डोगरी में 'सांत' कहा जाता है। यह भी बड़ा महत्वपूर्ण कार्य समझा जाता है। इस दिन सगन के दिन में भिगोए गए माश और गेहूं को पांच सौभाग्यवती स्त्रियां मिल कर पीसती हैं। माश के 'बड़े' बना दिये जाते हैं और गेहूं का पकवान घी में तला जाता है। जो चूल्हिका सगन के दिन बनाई गई थी, उसी में आग जला कर, यह पकवान तैयार किया जाता है, चूल्ही पर कड़ाही रखी जाती है। उस में घी डालकर पकवान बनाया जाता है। डोगरी में इसे 'कड़ाई जज्जनी' कहते हैं। यह करने के बाद गणपति तथा नव-ग्रह-पूजन होता है। पूजन पर कन्या या वर को (कन्या के विवाह में कन्या और लड़के के विवाह में लड़का) बैठाया जाता है, साथ उसका मामा बैठता है। यह पूजन मामा द्वारा किया जाता है और इस का पूरा खर्चा उसी को करना पड़ता है। डोगरों में इस प्रथा का प्रचलन लड़की या लड़के के घर वालों को विवाह सम्बन्धी व्यय में कुछ सहायता देने के निमित्त किया गया था। शान्ति कर्म (सांत) भिन्न-भिन्न प्रांतों में अपने देशाचार और कुलाचर द्वारा मनाया जाता है। यू० पी० तथा अन्य कई प्रदेशों में इस दिन पितृ पूजन भी इसके साथ किया जाता है किन्तु डुग्गर प्रदेश में यह प्रथा नहीं है। पितृ-कार्य का सम्बन्ध मृतक पुरुषों से होने के कारण देशाचारानुसार उसे इस मांगलिक कार्य में स्थान नहीं दिया जाता। इस कार्य में सौभाग्यवती स्त्रियों को ही स्थान इसलिये दिया गया है कि वे प्रसन्नता और प्रफुल्लतापूर्वक कार्य करेंगी। विधवा होगी तो वह अपने अतीत के सुनहरे दिन याद करके अन्दर ही अन्दर रोएगी या अकुलाएगी। उसके हृदय पर आघात भी पहुंचेगा। इसी कारण इन कार्यों में विधवाओं को स्थान नहीं दिया गया। बात तो फिर भी विवादग्रस्त ही रहती है किन्तु इस का कोई विकल्प भी नहीं मिल पाता।

शान्ति कर्म के पूजन की समाप्ती पर लड़के के शरीर पर सुगन्धित द्रव्य का लेपन करके स्नान कराया जाता है। इस लेपन की डोगरी में 'बुटना' कहा

जाता है। इस कार्य में स्त्रियां मिल कर वैवाहिक गीत गाती हैं। ये गीत डोगरी भाषा में ही मौलिक रूप में परम्परा से चलते आए हैं, जिन की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

अड़यो मलयो तेल बुटना मलेयो,
अड़यो मलयो तेल पायो लाचियां,
मेरे लाडले दा व्याह सजायो चाचियां।

लड़की के विवाह की शान्ति की समानता भी इसी रूप में की जाती है, इस 'लेपन-स्नान' कार्य का उद्देश्य वर या वधू के सौंदर्य प्रसाधन का सम्पादन करना है जो शास्त्रोक्त होने के कारण वैवाहिक नियम बन गया। डोगरा प्रदेश में सात बार स्नान कराने की प्रथा नहीं है। यू० पी०, बिहार आदि कुछ प्रदेशों में लेपन के बाद वर को सात बार स्नान कराया जाता है। बुटने में पिसे हुए जौ, माश, तेल और दही डाला जाता है। दही शीतल और शान्ति कारक है। तेल स्निग्ध होता है। दही के साथ मिल कर वह रोम-रोम में प्रविष्ट होकर शीतलता और स्निग्धता देने के साथ खुश्की दूर कर देता है। जिस से शरीर की कान्ति निखर उठती है। स्नान के अनंतर वर, वधू के हाथ रक्षा-सूत्र बांधा जाता है, यह प्रथा भारत के सभी प्रांतों में है, किन्तु कहीं-कहीं इसे पांव में बांधा जाता है, डोगरी में इसे 'गाना' कहा जाता है। इस में कौड़ी और लोहे का छल्ला बन्धा रहता है। वस्तु विज्ञान के अनुसार इन दोनों वस्तुओं में भूत-प्रेत की छाया तथा अन्य अनिष्ट प्रभावों को रोकने की शक्ति रहती है। इस कृत्य के पश्चात् विवाह लग्न तक लड़के या लड़की को कहीं बाहर घूमने की आज्ञा नहीं होती जिस से सब प्रकार की बाधाओं से उनके शरीर को सुरक्षित रखा जा सके। इससे विवाह लग्न तक उनका शरीर अधिक कान्तियुक्त बन जाता है। इस बुटना लेप और स्नान की क्रियाओं को यू० पी०, मध्य प्रदेश, बिहार प्रांतों में 'बान' कहा जाता है। शान्ति कर्म (सांत) के दिन ब्राह्मण भोज अथवा सर्वसाधारण भोज का आयोजन भी रहता है। इस शान्ति कर्म के पूजन में मामा वर के सिर पर पानी के लोटे डालता है। इसे डोगरी में 'बारे भरना' कहा जाता है। यह भी एक मंगल-अभिषेक है। इस अवसर पर डोगरा वधूटियां अपने कलकण्ठों से मंगल गान गाती हैं, जिस की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

'मामा वारड़े भरेयो'
मामा जाई खलोता बन्ने,
मामा लकड़ियां गुड़ भन्नै।'

इस कृत्य के बाद मामा लड़की को नासिका भूषण आदि पहनाता है। हाथों में चूड़ा भी डालता है। लड़का हो तो उसे यथाशक्ति दक्षिणा देता है। दूसरे दिन लड़के का विवाह हो तो बरात चलती है। विवाह का वास्तविक रूप इसी दिन प्रारम्भ होता है। डोगरी प्रथा के अनुसार इसका विधान इस प्रकार है—सवेरे लोग विवाह वेदि के मण्डल के निर्माण में जुटते हैं। काष्ठ के चार स्तम्भों के साथ केले के स्तम्भ तथा फूलों से लदी हुई टहनियां, चारों ओर जोड़ कर ऊपर गुलाबी रंग का कपड़ा तान दिया जाता है। उसके चौकोन में फूल मालाएं भी टंगी रहती हैं। इस मण्डप का पूजन भी होता है। इस मण्डप के चारों कोनों में जल पूरित चार कलश रखे जाते हैं। ये चार घट चार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) के प्रतीक हैं, जिन्हें मानव जीवन रूपी एक सूत्र में पिरोया जाना है। इनसे मानव को आयु के अनुसार चार आश्रमों में परिपालन की शिक्षा मिलती है। चार जल-कुम्भ रखने का यही एक मात्र रहस्य है। सांझ के कुछ पहले एक स्थान पर सब कुटुम्बी, मित्र तथा सम्बन्धी इकट्ठे होकर बैठते हैं। विवाह-योग्य लड़के को दूल्हा बनाया जाता है। डोगरी में दूल्हे को 'मराज' (महाराज) कहा जाता है। लड़के को दूल्हे की पूरी पोशाक पहिना कर सभा के मध्य में बैठाया जाता है। उसके आगे दूर्वा, चावल तथा सुपारी सहित एक थाल रखा जाता है। इस समय वहां के सब लोग अपनी-अपनी दातव्य धन राशि उस थाल में रखने लगते हैं, इसे डोगरी में "बुहाड़ा" कहा जाता है। इस में जाति, वर्ग, भाई-बन्धु, दोस्त-मित्र आदि सब लोगों का योगदान रहता है। यह प्रथा परम्परा से एक-दूसरे की विवाह-शादियों के साथ जुड़ी हुई है। इसे डोगरी में 'बर्तन' भी कहा जाता है। जिन्होंने दूसरे की शादियों में जो कुछ दिया रहता है, अपने घर की शादियों में वे वैसा ही बर्तन परम्परानुसार ले लेते हैं। इस प्रकार 'बर्तन' (बुहाड़ा) उगाही हो जाने पर सब लोग संक्षिप्त भोजन करके बरात के प्रस्थान की तैयारी में लग जाते हैं। महाराज के लिये घोड़ी शृंगारी जाती है। बराती सज-धज कर चलने को तैयार होते हैं। इस कृत्य को 'सेहराबन्दी' कहते हैं। डोगरी में इसे "सेहरा लगना" भी कहते हैं। लड़के को सेहरा और पोशाक मामा से मिलती है। महाराज के घर के दरवाजे के बाहर निकलते ही नाई आरती लेकर आ जाता है। वहां दूल्हा खड़े-खड़े आरती ग्रहण करता है। स्त्रियां मधुर गीत गाने लगती हैं। जिस की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

'सेहरा लांदे लाड़ेगी गर्मी आई,

पंखा झोले नाई, वेलां देन्दी माई
कोल खलोत्ते भाई।"

सेहरा लग कर बुहाड़ा लेकर तथा भोजन करके बरात चल पड़ती है। उसी समय बने-ठने दूल्हे की आंखों में भाभी काजल डालती है। इस समय के गीत की एक पंक्ति इस प्रकार है—

"के किश देगा सुरमा प्वाई।"

यानी हे देवर! काजल डालने की दक्षिणा मुझे क्या देगा? जब दूल्हा घोड़े पर सवार हो जाता है, तो थोड़ी देर बहन उसकी घोड़ी को चनों की भीगी दाल खिलाती है और गाती है—

"के किश देगा वीरा दाल चराई,
वीरा बाग फड़ाई,
के केश देगा भैंनू दा लाग।"

बरात को डोगरी में 'जानी' कहा जाता है। जब 'जानी' चलने लगती है, तो स्त्रियां गाने लगती हैं—

"लो घरैं जानी चली,
जाना डुड्डू शहर लोको,
छः जनिहार चले,
सत्तमा म्हराज लोको।"

बरात में भाग लेने वालों की संख्या का निर्णय लड़की वालों को करना पड़ता है, जिस की सूचना विवाह से चार-पांच दिन पहले ही आ जाती है। साधारण रूप में जानी (बरात) में 20 से 40 (व्यक्ति) शामिल होते हैं, किन्तु अमीरों के यहां सौ तक संख्या पहुंच जाती है। बीस-पच्चीस वर्ष पहले यह बरात लड़की वालों के घर तीन दिन टिकती थी किन्तु अब एक ही दिन। शहरों में तो एक ही समय का भोज दिया जाता है तथा कभी-कभी केवल एक ही समय की चाए।

बरात जब लड़की वालों के घर पहुंचती है

लड़की वाले रात को बरात के स्वागतार्थ प्रस्तुत रहते हैं। मण्डप सजा होता है, लोग किसी निश्चित स्थान पर खड़े रहते हैं, एक ओर स्त्रियां गा रही होती हैं, मांगलिक चहल-पहल ठाठें मार रही होती है और घर में विशाल पैमाने पर योग्य पदार्थों की विविधता तैयार करके सजाई जा रही होती है। उसी समय बैण्ड-बाजों के साथ बरात आ पहुंचती है। जन समूह के एक किनारे

पर घोड़ी तथा शेष बराती खड़े हो जाते हैं। यहां दोनों पक्षों के पिता तथा मामा परस्पर गले मिलते हैं, इसे डोगरी में 'मिलनी' कहते हैं। लड़की का पिता लड़के के पिता के साथ मिलते समय पांच-दस रुपये उसके सिर पर से घुमा कर उसे देकर गले मिल लेता है। इसी प्रकार लड़के का मामा भी करता है। इस घुमाव को डोगरी में 'वांडड़ा' कहा जाता है। इस का प्रयोजन है कि कन्या पक्ष के पिता-मामा की सब विघ्न बाधाएं दूर होने की वे कामना करते हुए उन पर रुपये वारते हैं जो हार्दिक प्रेम और ममता का प्रतीक है। इसके अनन्तर जहां बरात के ठहरने का प्रबन्ध किया गया हो, वहीं सब चल पड़ते हैं। दूल्हा के लिये भी वहीं अलग-आसन जमाया हुआ होता है।

अन्य प्रांतों में दूल्हे को घोड़ी पर चढ़ कर बरातियों के साथ कुछ देर श्वसुर के घर जाना पड़ता है, वहां स्त्रियां उस की आरती उतारती हैं, किन्तु डोगरा प्रदेश में यह प्रथा नहीं है। कुछ देर आराम कर लेने पर भोजन का संदेश आ जाता है। दूल्हे के लिये भोजन वहीं पर लाया जाता है। उसके साथ दो चार आदमी रहते हैं, शेष भोजन करने लड़की के घर चले जाते हैं। उसी रात को, मुहूर्त के अनुसार, जो विवाह-लग्न निश्चित किया रहता है, विवाह-वैदिक में विवाह सम्पन्न होने लगता है।

विवाह-विधि

साधारण कृत्य के अनन्तर वर-पूजन किया जाता है, फिर सामान्य कृत्य पद्धति के बाद वर को चार वस्त्र दिये जाते हैं। वर पूजन के साथ दोने में मधुपर्क डाल कर वर के आगे रखा जाता है। इस में दूध, दही, शहद और मक्खन मिला रहता है। प्राचीन युग में मान्य अतिथि के आगमन पर उसी मधुपर्क द्वारा उसका सत्कार किया जाता था, जिस का स्थान आज के युग में चाय-पान ने ले लिया। वर वधू के पिता का मान्य अतिथि होता है। वस्त्र चतुष्ट दान के बाद 'जौल-बन्धन' क्रिया की जाती है। इसके अन्तर्गत वर के दुपट्टे से ढाई गज का लाल कपड़ा बांध कर उसका दूसरा छोर वधू के आंचल से बांधा जाता है। फिर दोनों अग्नि-परिक्रमा करते हैं। इसे डोगरी में 'गण्ड चितरावा' कहते हैं। इस में दोनों वर-वधू अग्नि को साक्षी रखने के रूप में उस की परिक्रमा करते हैं।

इसके अनन्तर कन्यादान होता है। डुग्गर की प्रथानुसार पिता हाथ में संकल्प लेकर कन्या दान करता है, किन्तु इस दान के पहले कन्या का पिता वर से गोदान करवाता है एवं कुछ रुपए पैसे उस से संकल्प करा कर बच्चों में बांट

देता है। इस वस्त्र को क्रमशः धोती व दक्षिणा कहा जाता है। यह कार्य हो जाने के पश्चात् कन्या का पिता लड़के का वर के रूप में वरण करता है। संकल्प के कुछ शब्द इस प्रकार हैं—'एभिः स्वर्णाङ्गुलीयत वासोभिः रागिन वृहस्पति देवतेरमुख गोत्र प्रवरशाखिनमुकवेदाध्यायिन ममुक......वरं कन्या दान प्रति ग्रहाकत्न त्वां वृणे।"

इस के उत्तर के रूप मे वर के मुंह से 'वृतोऽस्मि' वाक्य कहलवाया जाता है। इस क्रिया के बाद वर को दी गई धोती उसे पहनाई जाती है। फिर कृत्य के प्रधान अंक कुशकाण्डिका का सम्पादन किया जाता है। यह विवाह संस्कार का वृहत्कर्मकाण्ड है। इस की विधि के प्रदर्शन की वहां आवश्यकता नहीं। यह कुशकाण्डिका कृत्य भारत के सब प्रांतों में एक ही प्रकार से किया जाता है।

यह सब कुछ कर लेने के पश्चात अब वास्तविक कन्यादान विधि शुरू होती है। वर और वधू दोनों गणेशादि पंचाङ्गदेवता का पूजन करते हैं, फिर गोत्रोच्चार होता है। पहले वर का फिर कन्या का गोत्र उच्चारित किया जाता है। यहां कन्या का पिछला गोत्र समाप्त करके उसे पति के गोत्र में प्रविष्ट किया जाता है। ऐसी कृत्य विधियों में मङ्गलाष्टक के श्लोक पढ़े जाते हैं जिन में दोनों की मङ्गल कामना की गई होती है। एक श्लोक इस प्रकार है—

"गंगा सिंधु सरस्वती च यमुना गोदावरीं नर्मदा,
कावेरी सरयू महेन्द्र तनया चर्मण्वती देविकाः।
क्षिप्रा वेत्रवती महासुर नदी ख्याता च या मण्डकी,
पूर्णा पुण्य जलैः समुद सहिताः कुर्वन्तु नो मङ्गलम्।"

अब कन्यादान का संकल्प शुरू होता है, संकल्प की पंक्तियां काफी लम्बी हैं, जिन में दोनों पक्षों की पिछली दो पीढ़ियों के प्रधान पुरुषों (दादा और पिता) के नाम-गोत्र, प्रवर शाखा मूल आदि का निर्देश होकर फिर कन्या और वर का गोत्र प्रवर सूत्र शाखा आदि का उच्चार करने के बाद 'इमां कन्यां स्वर्णालंकारलतां' आदि विशेषण जोड़ कर अमुक नामक वर को देता हूँ, यही है संकल्प का अन्तिम भाग। अब कन्यादान हो गया मान लिया जाता है। इसके अनंतर वर वधू को अपने साथ लाए गए वस्त्राभूषण देता है, जिसे डोगरी में 'वरासूई' कहा जाता है। विवाह का यह भी एक प्रधान अंग है। जब 'वरासूई' खोलने का समय आता है तो स्त्रियां एवं बालिकाएं विशेष उत्सुकता के साथ इसे देखने के लिये इकट्ठी हो जाती हैं। वे देखती हैं कि वर पक्ष वालों ने बहू को क्या

कुछ दिया है। इसी में वर पक्ष वालों की धनाढ्यता का परिचय मिल जाता है। इसी समय वर द्वारा लाजा-होम किया जाता है। इसी बीच शंख धुन होती है। 'वरासूई' के वस्त्र भूषणों से कन्या को सजा दिया जाता है और दोनों वर वधू बाहर की वेदी में आ जाते हैं। वहां घी का हवन किया जाता है। यह प्रथा डोगरा प्रदेश में ही है। पंजाब में इसके स्थान पर चरू का होम किया जाता है। इसके अनन्तर सप्तपदी का कार्य शुरू होता है। डोगरी में इसे "लामा फेरे" कहा जाता है। यह भी विवाह का प्रधान अंग है। इस सप्तपदी की तीन भांवरियों में लड़की आगे रहती है चौथी में लड़का आगे हो जाता है। तदनन्तर लड़की वर के बाईं ओर बैठ जाती है। अब उसे वामाङ्गी होने का अधिकार मिल गया है, दूसरे शब्दों में अब वह पति की अर्द्धांगिनी है, किन्तु इसके पहले वर वधू दोनों का शर्तनामा चलता है। एतत्सम्बन्धी श्लोक इसी प्रकरण में पण्डित द्वारा पढ़े जाते हैं, जिन का अर्थ भी दोनों को समझा दिया जाता है, लड़के की कुछ शर्तें (हिन्दी पद्यों में अनूदित) इस प्रकार हैं—

"सौभाग्य हित पाणि ग्रहण करता तुम्हारा मैं यहां,
तुम मुझ रयित के साथ हो, जैसे बने वैसे यहां,
वृद्धत्व तक संसार सुख भोगो सदा मम साथ हो,
पति मैं तुम्हारा हूँ शुभे पत्नी हुई तुम मम यहां,
मैं प्रेमपूर्वक हूँ तुझे स्वीकार करता तुम वहां।"

इसी प्रकार लड़की की कुछ शर्तें नीचे दी जाती हैं—

(1) लड़के में पुत्र पैदा करने की शक्ति हो।
(2) दोनों का धर्म एक हो।
(3) पुण्य का आधा हिस्सा पत्नी को मिलना चाहिये, इत्यादि।

शर्तों के सन्दर्भ में एक पति की ओर से यह भी कही जाती है—मदीय चित्तानुगतं च चितं, सदा ममाज्ञा "परिपालनंउ"—अर्थात् है अर्द्धांगी अब से तुमने मन वचन द्वारा मेरे साथ एकरूपता ग्रहण करनी होगी और सदा मेरी आज्ञा का पालन करना होगा। इस समय दोनों एक दूसरे की शर्तों को अग्नि को साक्षी रख कर स्वीकार करते हैं। इस सब कृत्य के हो जाने पर विवाह-दक्षिणा का संकल्प करके उसे पण्डित को दे दिया जाता है।

अन्त में मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि डुग्गर प्रदेश में उपरोक्त विवाह-विधि का पालन मुख्यतः सनातनधर्मी हिन्दुओं द्वारा ही किया जाता है।




K. P. SABHA AMBPHALA
LIBRARY
No ....
Date............
JAMMU


K.P. SA

(Dr. R. L. Shant)



A Publication of
J&K Academy of Art, Culture & Languages, Jammu.
Printed at Dogra Printing Press, Jammu.